कौल-कल्पतरु
चण्डी
वर्ष ५६
अङ्क ३
बन्दौं गुरु-पद-कञ्ज

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान द्वारा प्रचारित उपयोगी प्रकाशन

अलोप-शङ्करी देवी [ललिता पीठ] ४)
तीर्थ-राज प्रयाग विषयक पुस्तक।

अघोरी का उपदेश ८)
अघोर-साधना से सम्बन्धित उपदेश।

अध्यात्म चर्चा ५)
जीवन और उसकी मुक्ति, माया की महिमा, मनुष्य का काष्ठ शरीर, ईश्वर-जीव और माया, जप और ध्यान, प्रणव-महिमा आदि शीर्षकों से पुस्तक की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है।

अध्यात्म-योग ५)

अक्षय-वट ५)
प्रसिद्ध अक्षय-वट का शोधात्मक वर्णन।

आगमोक्त योग-साधना ५)
'कुण्डलिनी-योग' की अनुपम पुस्तक।

आनन्द-लहरी १२)
हिन्दी टीका सहित।

आपदुद्धारक श्रीबटुक-भैरव स्तोत्र ६)
श्रीबटुक-भैरव के अष्टोत्तर-शतनाम आदि स्तोत्र।

उपदेश-मुक्तावली १०)

क्या 'राम-चरित-मानस' तन्त्र है? ३०)
'राम-चरित-मानस' की अनूठी समीक्षा।

कमला-कल्पतरु ४५)
माँ कमला की उपासना का विस्तृत विवरण देनेवाला निबन्ध एवं स्तोत्र-संग्रह।

कालिका-कवचम् ३)

काली-पूजा-पद्धति ५५)
दुर्लभ हस्त-लिखित पाण्डु-लिपि के आधार पर। श्रीआदि-काली-मठ, काशी का प्रसाद।

काली-कर्पूर-स्तवः (सविधि) ६)

काली-कल्पतरु यन्त्रस्थ

काली-तन्त्र (भाषा-टीका-सहित) १२)

काली-नित्यार्चन १०)

काली-स्तव-मञ्जरी २०)
इस नवीन संस्करण में भगवती काली के ३० स्तोत्रादि हैं। प्रायः सभी स्तोत्रों का हिन्दी रूपान्तर भी है।

काली-सहस्र-नाम-स्तोत्र यन्त्रस्थ

कोकिलार्णव तन्त्र (हिन्दी अर्थ सहित) १५)

कौल विलासः १५)
कौल-धर्म का माहात्म्य।

कौल-कल्पतरु २०)
कौल-धर्म का विवेचन।

कुल-चूडामणि तन्त्र (हिन्दी अर्थ सहित) १५)

गणेश-साधना-सुधा १५)

गङ्गा-यमुना-सरस्वती पूजा-अङ्क ४)

गङ्गा-सहस्र-नाम-साधना ६)

गायत्री-कल्पतरु यन्त्रस्थ

गुरु-तन्त्र (हिन्दी टीका सहित) ६)

गुरु-तत्त्व-दर्शन एवं गुरु-साधना १५)

चण्डी-पुराण (हिन्दी अर्थ सहित) २०)

चक्र-पूजा २५)
'चक्र-पूजा' शाक्तों की सर्व-श्रेष्ठ पूजा है। इसी पूजा के द्वारा शाक्त-साधक अपना इह-लोक और पर-लोक बनाते हैं। शाक्तों की यह पूजा संस्कृत भाषा में ही लिखी मिलती है। इसीलिए हिन्दी में यह पुस्तक प्रकाशित की गई है।

चक्र-पूजा के स्तोत्र १५)
चक्र-पूजा (महा-पूजा) के अवसर पर जिन स्तोत्रों का पाठ साधकों को करना होता है,उन्हें इस पुस्तक के रूप में व्यवस्थित ढङ्ग से संग्रहीत किया गया है।

चण्डी- चरितावली ५)

कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज (उ० प्र०) ☎ : ५०२७८३

★ जयति श्रीगुरु वन-खण्डेश्वर ★

'**गुरु**' का अर्थ स्थूल शरीर नहीं है क्योंकि मानव शरीर '**चिन्मय देह**' नहीं है। हिन्दू शास्त्रों में '**देह-पूजा**' के लिए स्थान नहीं है। '**स्थूल शरीर**' के माध्यम से '**सूक्ष्म**' की तुष्टि होती है। अतएव माता, पिता और अतिथि के **शरीर** सेव्य तो हैं किन्तु वे आराध्य नहीं हैं। उस शरीर में, जो '**दिव्य ज्ञान-ज्योति**' है, वही आराध्य है। —'**राष्ट्र-गुरु' स्वामी जी**

■ **सम्पादक**
रमादत्त शुक्ल, ऋतशील शर्मा

■ **पता**
चण्डी-धाम
अलोपीदेवी मार्ग, प्रयाग-राज
दूरभाष : (०५३२) ५०२७८३

■ **अक्षर-संयोजन**
ए.एस. लेजर प्वाइण्ट

■ यह प्रति अनुदान : रु० ८.००

■ वार्षिक अनुदान : रु० १२०

■ आजीवन अनुदान : रु० १५००

■ **प्रकाशक :**
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान,
प्रयाग-राज-२११००६

'कौल-कल्पतरु' चण्डी
ज्येष्ठ, 'विजय' सं० २०५७ वि०-जून, २०००
'गुरु-पूर्णिमा'-अङ्क

इस अङ्क में

'सूचना'

'**चण्डी**' वर्ष ५६, जुलाई, २००० अङ्क सभी सदस्यों की सेवा में १७-२० जुलाई, २००० को भेजा जाएगा।

जो बन्धु '**चण्डी**' के सामान्य अङ्कों के अतिरिक्त अलग से प्रकाशित होनेवाले **विशेषाङ्क** वी०पी०पी० द्वारा मँगाते हैं, उनकी सेवा में उक्त जुलाई, २००० का अङ्क '**श्रीगायत्री कल्पतरु**' ('चण्डी' वर्ष ५६ का दूसरा विशेषाङ्क) के साथ **रियायती मूल्य की वी०पी०पी०** द्वारा भेजा जाएगा। **विशेषाङ्क-योजना के सदस्यों से निवेदन** है कि यदि वे पहले से प्रकाशित उक्त विशेषाङ्क को पुनः मँगाना न चाहते हों, तो कृपया हमें सूचित करने की कृपा करेंगे। **—ऋतशील शर्मा**

बन्दौं गुरु-पद-कञ्ज

* श्री ऋतशील शर्मा, चण्डी धाम, प्रयागराज, उ.प्र.

'अध्यात्म-मार्ग' में **'गुरु-कृपा'** सहायक ही नहीं,अपितु नितान्त आवश्यक है। यही कारण है कि **गुरु** को **'साक्षात् ईश्वर'** का स्वरूप माना गया है। **'योगिनी तन्त्र'** में स्पष्ट कहा गया है कि **मन्त्र** देने के समय, मनुष्य-रूप गुरु में, **महा-काल** का वास होता है। **मन्त्र** देने का **गुरु-कर्म** अमानुषी अर्थात् **दिव्य** होता है।

'गुरु-कृपा' का अनुभव स्थूल और सूक्ष्म—दोनों रूपों में होता है। **स्थूल-शरीरी गुरु** प्राप्त होने पर **'अध्यात्म-'** विषयक जिज्ञासाएँ तीव्र हो जाती हैं और साधक वेग से **'अध्यात्म-मार्ग'** पर अग्रसर होता है। इसके साथ-साथ यदि साधक को **सूक्ष्म- शरीरी गुरु** की कृपा भी प्राप्त हो जाती है, अथवा वह नितान्त एकान्त में **सूक्ष्म-शरीरी गुरु** से सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हो जाता है, तो साधना में उसकी सफलता निश्चित हो जाती है। इसीलिए वेद, तन्त्र, पुराण और स्मृतियों के ज्ञाता महात्मा तुलसीदास कहते हैं—

बन्दौं गुरु-पद-कञ्ज कृपा-सिन्धु नर-रूप हरि।
महा-मोह-तम-पुञ्ज जासु बचन रवि-कर-निकर॥

अर्थात् मैं कृपा-सागर नर-रूप हरि गुरु के चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ, जिनके वचन, सूर्य के प्रकाश के समान महा-मोह-रूपी अन्धकार से छुटकारा दिलाते हैं।

स्थूल रूप में **'गुरु'** भिन्न-भिन्न दिखाई देने के कारण हम लोग प्रायः **'गुरु-पद-कञ्ज'** का महत्त्व भली-भाँति समझ नहीं पाते हैं। वास्तव में, **'गुरु-पद-कञ्ज'**—साक्षात् **'शिव'** हैं। **'तन्त्र'** में लिखा है— हे देवि! मन्त्र-दाता गुरु शिर में स्थित सहस्त्र-दल-पद्म में जिस प्रकार **'शिव-स्वरूप'** गुरु का ध्यान करते हैं, वही ध्यान शिष्य भी अपने शीर्षस्थ कमल में करता है। इसलिए एक-मात्र शङ्कर ही सबके गुरु हैं। शिष्य को मन्त्र देने के समय में जिन भगवान् शङ्कर का अधिष्ठान होता है, उनका ही माहात्म्य सभी शास्त्रों में वर्णित है।

'गुरु-पादुका' के ध्यान से मन का अँधेरा दूर होता है और हृदय में प्रकाश उत्पन्न होता है। 'मन' भटकनेवाला और चलायमान है, **'गुरु-पादुका'** का स्मरण उसे एक बिन्दु में स्थिर करता है।

'गुरु-चरणों' के भीतर क्रियाओं के बीज छिपे रहते हैं, जिन्हें साधक अपने हृदय में बोकर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं। **'गुरु-चरणों'** का आश्रय लेकर जो व्यक्ति संसार में अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता है, उसको ये भयङ्कर कष्ट से पार होने के लिए नौकाएँ भी बताते हैं। शर्त यही है कि **'गुरु-चरणों'** से अपने दोषों—भूलों को बताने की प्रार्थना सदा होनी चाहिए और भूल या दोष ज्ञात होने पर उन्हें सुधारने का सच्चाई से प्रयत्न भी होना चाहिए।

आज हम मनुष्यों के लिए नित नई-नई मशीनों का निर्माण हो रहा है। इनसे जीवन ऊपर से तो सुख-मय बन रहा है, किन्तु अन्दर-ही-अन्दर तीव्र स्पर्धा-द्वेष आदि का विस्तार हो रहा है। हृदय में **'गुरु-चरण'**-रूपी सूक्ष्म-तम मशीन की छाया न होने से **'आनन्द'** के दर्शन कहीं नहीं हो रहे हैं।

अतः आइए! फिर से **'श्रीगुरु-चरणों'** के ध्यान-पूजन की अलख जगाएँ। अपना देश भारत-वर्ष गुरुओं का देश है। स्थूल रूप में **सद्-गुरु** की प्राप्ति हो या न हो, सूक्ष्म रूप में सदा उपस्थित गुरुओं —**'गुप्तावतार' बाबा श्री,'राष्ट्र-गुरु'**. **परम पूज्य स्वामी जी महाराज, 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी** के वचनों का श्रवण-मनन करें। इससे **नारायण** एवं **शिव-स्वरूप गुरुओं —भगवान् वेद-व्यास, आदि शङ्कराचार्य** की कृपा प्राप्त होगी और शास्त्रों का मर्म भी ज्ञात होगा। ऐसा होने पर कैसा भी कठिन समय या कठिन परीक्षा की घड़ी होगी, हमें **'विजय'** प्राप्त होगी। **'विजय'** नामक नए संवत् में हमें **'गुरु-पूर्णिमा'** इसी भाव से मनानी चाहिए।

***

सहस्त्रार में गुरुदेव का ध्यान

* 'कुल-भूषण' पं. रमादत्त शुक्ल, चण्डी धाम, प्रयागराज, उ.प्र.

ब्राह्म मुहूर्त में **गुरुदेव** का ध्यान करने के पूर्व साधक को **'हंस-पीठ'** का ध्यान करना होता है क्योंकि **'हंस-पीठ'** के ऊपर ही **गुरु-पादुका** स्थित है। गुरुदेव के पाद-पीठ-स्वरूप **'हंस'** का शरीर ज्ञान-मय है, उसके दो पङ्ख **आगम** और **निगम** हैं। चरण-युगल **शिव** और **शक्ति-मय** हैं, चक्षु-पुट **प्रणव-स्वरूप** है, नेत्र और कण्ठ **काम-कला-स्वरूप** हैं। इस प्रकार की आकृतिवाले **हंस** की पीठ पर विराजमान **गुरुदेव** ही परम शिव, परमात्मा या पर-ब्रह्म हैं। योग का सहारा लिए बिना अर्थात् समाधिस्थ हुए बिना इस **पर-ब्रह्म** का दर्शन करना सम्भव नहीं। आत्मा-रूप में ब्रह्म इसी स्थान में प्रत्येक जीव के शरीर में अवस्थित है। वह सर्व-व्यापी है, किन्तु उसका दर्शन केवल इसी स्थान में मिलता है।

'हंसोपनिषद्' में **'हंस-पीठ'** का ध्यान इस प्रकार दिया है—

अग्नि सोमो पक्षावोङ्कारः शिरो बिन्दुस्तु नेत्रं,
मुखं रुद्रो, रुद्राणी चरणौ, बाहु कालश्चाग्निश्चोभे पार्श्वे भवतः।
पश्यत्यनागारश्च, शिष्टोभय-पार्श्वे भवत्तः।।

अर्थात् अग्नि और सोम हंस के दो पङ्ख हैं, ॐकार शिर है, बिन्दु नेत्र है, रुद्र मुख है, रुद्राणी दोनों चरण हैं, बाहु काल और अग्नि इसके दो पार्श्व हैं। इसका कोई घर नहीं है। इसके आगे-पीछे वैराग्य विद्यमान है।

उक्त **परम शिव** या **ब्रह्म** के मस्तक के ऊपर **सहस्त्रदल-कमल** छत्राकार में **द्वादश-दल पद्म** को आवृत्त किए है। **सहस्त्र-दल-कमल** के मध्य में जो **चन्द्र-मण्डल** है, उसके मध्य में चन्द्रमा की **अमा-कला** नाम की **सोलहवीं कला** स्थित है, जो रक्त-वर्णा, तड़ित् के समान चमकीली और अत्यन्त सूक्ष्म है। इस कला के मध्य में **निर्वाण-कला** है, जो सभी साधकों की इष्ट-देवता-स्वरूपा है। उसकी गोद में निर्वाण-शक्ति-रूपा **मूल प्रकृति** बिन्दु और विसर्ग-शक्तियों के सहित **परम शिव** से लिपटी हुई है, जिसका ध्यान करने से साधक निर्वाण-मुक्ति को प्राप्त करता है।

हंस-पीठ के ऊपर विराजमान **परम शिव** की चैतन्य सत्ता से ही जीव में चेतना की स्फूर्ति होती है और परम शिव की गोद में अवस्थित शक्ति-रूपा **मूल प्रकृति** ही जीव की शक्ति है। इसी से इस **परम शिव** और **शक्ति** को वेदान्त में **सबल ब्रह्म** और **माया** कहा है। सांख्य मत में इन **शिव-शक्ति** को **पुरुष** और **प्रकृति** नाम दिया है। पौराणिक मत में इन्हीं दोनों को **हर-गौरी, हरि-हर-पद, सीता-राम** और **राधा-कृष्ण**-रूप में वर्णन किया है। तन्त्र-मत में इन्हें **परम शिव** और **परमा शक्ति** कहते हैं। पञ्च-देवों के सभी उपासक **हंस-पीठ** के इसी स्थान को अपने-अपने इष्ट का स्थान मानते हैं। परमहंस पूर्णानन्द-कृत **'षट्-चक्र'** में यही तथ्य निम्न प्रकार स्पष्ट किया गया है—

शिव-स्थानं शैवाः परम-पुरुषं वैष्णव-गणाः।
लयन्तीति प्रायो हरि-हर-पदं केचिदपरे।।
पदं देव्या देवी-चरण-युगलानन्द-रसिका।
मुनीन्द्रा अप्यन्ये प्रकृति-पुरुष-स्थानममलम्।।

अर्थात् इस स्थान को **शैव** लोग **शिव** का स्थान, वैष्णव लोग **परम-पुरुष (विष्णु)** का स्थान, अन्य कुछ लोग **हरि-हर-पद,** शाक्त लोग **देवी** का स्थान और मुनि-लोग **प्रकृति-पुरुष** का

स्थान कहते हैं। सभी शास्त्रों की यही सम्मति है कि इसी **सहस्रार पद्म** में ही **गुरुदेव** का ध्यान करना चाहिए। **गुरुदेव** स्वयं इसी स्थान में विराजमान रहते हैं। **'रुद्रयामल'** में लिखा है—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय, कुल-वृक्षं प्रणम्य च।
शिरः-पद्मे सहस्रारे, चन्द्र-मण्डल-मध्यके।।
अकथादि-त्रिरेखीये, हंस-मन्त्र-सुपीठके।
ध्यायेन्निज-गुरुं वीरो, रजताचल-सन्निभम्।।

।।गुरुदेव का ध्यान।।

सहस्र-दल-पङ्कजे, सकल-शीत-रश्मि-प्रभम्।
वराभय-कराम्बुजं, विमल-गन्ध-पुष्पाम्बरम् ।।
प्रसन्न - वदनेक्षणं, सकल-देवता-रूपिणम् ।
स्मरेच्छिरसि हंसगं, तदभिधान-पूर्वं गुरुम् ।।

ध्यान करने के बाद **पादुका-मन्त्र** का उच्चारण कर **सम्प्रदाय-परम्परा** से **गुरुदेव** के नाम का उच्चारण कर पूजा करे। **'रुद्रयामल'** में कहा है कि—

परमानन्द-रसापूर्णं, स्मरेत् तन्नाम-पूर्वकम् ।
तार-त्रयं समुच्चार्य, हसखफ्रें ततः परम् ।।
हसक्षमलवरयूं , सहखफ्रें हसौस्ततः ।
अमुकानन्द-नाथान्ते, अमुकी-देव्यनन्तरम् ।।
अम्बा श्रीपादुकां दत्वा, पूजयामि नमोऽन्तकः ।
अयं श्रीपादुका-मन्त्रः, सर्वेप्सित-फल-प्रदः ।।

'मातृकाभेद तन्त्र', प्रथम पटल में भी बताया है कि—

वाग्बीजं च महा-माया, विष्णु-शक्तिं समुच्चरेत्।
हसखफ्रें तथाऽऽनन्द-भैरवस्य मनुं ततः।।
श्रीगुरुश्च तथा शक्तेर्मन्त्रमेतत् सुरेश्वरि!
गुरुरानन्द नाथान्तश्चाम्बान्ता शक्तिरीरिताः।
पूजयामीति देवेशि! पूजा-विधिरिति प्रिये!।।

पादुका-मन्त्र

उक्त प्रमाणों के अनुसार **पादुका-मन्त्र** इस प्रकार है--

ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसक्षमलवरयूं सहखफ्रें सहक्षमलवरयीं हसौः श्रीअमुकानन्द-नाथ श्रीअमुकी-देव्यम्बा श्रीगुरु-पादुकां पूजयामि नमः।

उक्त **पांदुका-मन्त्र** से **पूजन** और **जप** करने के बाद वाग्भव वीज **'ऐं'** से प्राणायाम-त्रय कर **कुल-गुरुओं** का स्मरण करे। यथा—

कुल-गुरु-स्मरण

प्रह्लादानन्दनाथाख्यं, सनकानन्द-नाथकम्।
कुमारानन्द-नाथाख्यं, वशिष्ठानन्द-नाथकम् ।।
क्रोधानन्द-सुखानन्दौ, ध्यानानन्दं ततः परम्।
बोधानान्दं ततश्चैव, ध्यायेत् कुल-मुखोपरि।।
महा-रस-रसोल्लास-हृदयाघूर्ण-लोचनाः।
कुलालिङ्गन-सम्भिन्न-चूर्णिताशेष-तामसाः।।
कुल-शिष्यैः परिवृताः, पूर्णान्तःकरणोद्यताः।
वराभय-कराः सर्वे, कुल-तन्त्रार्थ-वादिनः।।

इसके बाद **गुरु-मन्त्र** वाग्भव वीज **'ऐं'** का १०८ बार जप करे। तदनन्तर **गुरु-स्तोत्र** और **कवच** का पाठ कर संयत-चित्त होकर **गुरुदेव** को नमस्कार करे।

श्रीगुरु-कवच-स्तोत्रम्

।। देव्युवाच ।।

भूतनाथ महा-देव ! कवचं तस्य मे वद।
गुरुदेवस्य देवेश! साक्षाद्-ब्रह्म-स्वरूपिणः।।

।। ईश्वरोवाच ।।

अथातः कथयामीशे, कवचं मोक्ष-दायकम् ।
यस्य ज्ञानं विना देवि! न सिद्धिर्न च सद्-गतिः।।
ब्रह्मादयोऽपि गिरिजे! सर्वत्र याजिनः स्मृताः।
अस्य प्रसादात् सकला, वेदागम-पुरःसराः।।
कवचस्यास्य देवेशि! ऋषिर्विष्णुरुदाहृतः।
छन्दो विराड् देवता च, गुरुदेवः स्वयं शिवः।।
चतुर्वर्ग-ज्ञान-मार्गे, विनियोगः प्रकीर्तितः।
सहस्रारे महा-पद्मे, कर्पूर-धवलो गुरुः।।

वामोरु-स्थित-शक्तिर्यः, सर्वत्र परिरक्षतु।
परमाख्यो गुरुः पातु, शिरसं मम वल्लभे!।।
परापराख्यो नासां मे, परमेष्ठी मुखं सदा।
कण्ठं मम सदा पातु, प्रह्लादानन्द-नाथकः।।
बाहू द्वौ सनकानन्दः, कुमारानन्द-नाथकः।
वशिष्ठानन्दनाथश्च, हृदयं पातु सर्वदा।।
क्रोधानन्दः कटिं पातु, सुखानन्दः पदं मम।
ध्यानानन्दश्च सर्वाङ्गं, बोधानन्दश्च कानने।।
सर्वत्र गुरवः पातु, सर्व ईश्वर-रूपिणः।
इति ते कथितं भद्रे! कवचं परमं शिवे!।।
भक्ति-हीने दुराचारे, दत्वैतं मृत्युमाप्नुयात्।
अस्यैव पठनाद् देवि! धारणात् श्रवणात् प्रिये!।।
जायते मन्त्र-सिद्धिश्च, किमन्यत् कथयामि ते।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ, शिखायां वीर-वन्दिते!।।
धारणान्नाशयेत् पापं, गङ्गायां कल्मषं यथा।
इदं कवचमज्ञात्वा, यदि मन्त्रं जपेत् प्रिये!।।
तत् सर्वं निष्फलं कृत्वा, गुरुर्याति सुनिश्चितम्।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टे न कश्चन।।

।।कङ्काल-मालिनी-तन्त्रे गुरु-कवचम् ।।

***

स्त्री-गुरु-कव-स्तोत्रम्

।। शिव उवाच ।।

स्तोत्रं समाप्तं देवेशि! कवचं शृणु सादरम्।
यस्य स्मरण-मात्रेण, वागीश-समतां व्रजेत्।।
स्त्री-गुरु-कवचस्यास्य, सदाशिव ऋषिः स्मृतः।
तवाख्या देवता ख्याता, चतुर्वर्ग-फल-प्रदा।।
क्लीं वीजं चक्षुषोर्मध्ये, सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु।
ऐं वीजं मे मुखं पातु, ह्रीं जिह्वां परिरक्षतु।।
श्रीं वीजं स्कन्ध-देशं मे, हसखफ्रें भुज-द्वयम्।
हकारः कण्ठ-देशं मे, सकारः षोडशं दलम्।।
क्ष-वर्णस्तदधः पातु, लकारो हृदयं मम।
वकारः पृष्ठ-देशं च, रकारो दक्ष-पार्श्वकम्।।
युङ्कारो वाम-पार्श्वं च, सकारो मेरुमेव च।
हकारो मे दक्ष-भुजं, क्षकारो वाम-हस्तकम्।।
मकारश्चांगुलिं पातु, लकारो मे नखं वतु।
वकारो मे नितम्बं च, रकारो जठरं वतु।।
यीङ्कारः पाद-युगलं, हसौः सर्वाङ्गमेव च।
हसौर्लिङ्गं च लोमानि, केशं च परिरक्षतु।।
ऐं वीजं पातु पूर्वे मे, ह्रीं वीजं दक्षिणे वतु।
श्री वीजं पश्चिमे पातु, उत्तरे भूत-सम्भवम्।।
श्रीं पातु अग्नि-कोणे च, वेदाख्या नैर्ऋते वतु।
देव्यम्बा पातु वायव्यां, शम्भौ श्रीपादुका तथा।।
पूजयामि तथा चोर्ध्वं, नमश्चाधः सदाऽवतु।
इति ते कथितं कान्ते! कवचं परमाद्भुतम्।।
गुरु-मन्त्रं जपित्वा तु, कवचं प्रपठेद् यदि।
स सिद्धः सगणः सोऽपि, शिव एव न संशयः।।
पूजा-काले पठेद् यस्तु, कवचं मन्त्र-विग्रहम्।
पूजा-फलं भवेत् तस्य, सत्यं सत्यं सुरेश्वरि!।।
त्रि-सन्ध्यं यः पठेद् देवि! स सिद्धो नात्र संशयः।
भूर्जे विलिखितं चैव, स्वर्णस्थं धारयेद् यदि।।
तस्य दर्शन-मात्रेण, वादिनो निष्प्रभां गताः।
विवादे जयमाप्नोति, रणे च निर्ऋतिः समः।।
सभायां जयमाप्नोति, मम तुल्यो न संशयः।
सहस्रारे भावयन् तां, त्रि-सन्ध्यं प्रपठेद् यदि।।
स एव सिद्धो लोकेषु, निर्वाण-पदमीयते।
समस्त-मङ्गलं नाम, कवचं परमाद्भुतम्।।
यस्मै कस्मै न दातव्यं, न प्रकाश्यं कदाचन।
देयं शिष्याय शान्ताय, चान्यथा पतनं भवेत्।।
अभक्तेभ्यश्च देवेशि! पुत्रेभ्योऽपि न दर्शयेत् ।
इदं कवचमज्ञात्वा, दश-विद्यां च यो जपेत् ।।
स नाप्नोति फलं तस्य, चान्ते च नरकं व्रजेत् ।

।। मातृकाभेद-तन्त्रे स्त्री-गुरु-कवचम् ।।

श्रीगुरु-पूजन

* 'कुल-वाणी-रत्न' श्री बलराम दुबे, ज्वाइण्ट डाइरेक्टर सी0 बी0 आई0, नई दिल्ली

गन्ध– पद-पद्म-पादुका अर्पित, स्निग्ध सुरभि मलयज चन्दन की।
अर्पित आत्म-सुगन्धि हिरण की मन्त्र-मुग्ध गति अन्तर्मन की।।
पुष्प– गुरु-मुख स्मित अम्लान कुसुम की, हंस धवल मुस्कान गगन की।
अर्पित पञ्च-पुष्प शर मनसिज, मुखरित राग-रागिनी मन की।।
धूप– गुरु-पद गन्ध, द्रव्य, मधु-गुग्गुल, अगर-धूप, लौ यज्ञ हवन की।
अर्पित सुरभित स्पर्श अनाहत, ऊर्ध्व-रेत गति प्राण-पवन की।।
दीप– गुरु-पद-नख मणि-ज्योति-दीपिका, लज्जित रवि-शशि कान्ति नयन की।
अर्पित मणि-मय दीप्ति कामना, निर्निमेष छवि मुख-दर्शन की।।
रस-रस-गुरु-गुण-निधि रस कलश कराम्बुज, स्रवत गङ्ग-जल-धार यमुन की।
अर्पित पुण्य प्रयाग त्रिपुर तन, तुष्टि तृप्ति मन-प्राण मिलन की।।
सर्व-तत्त्व– गुरु-पद परमहंस-गति अर्पित, आत्म-गन्ध रस-ज्योति नयन की।
मलय-स्पर्श स्वर-बन्ध अलौकिक, अर्पित नख-शिख प्रणति नमन श्री।।
अर्पित गुरु-पद गङ्ग-यमुन-जल, माल गले अम्लान सुमन की।
माँगत वर 'बलराम' परम पद, छाँव कल्पतरु-वर उपवन की।।
जय गुरु परम परात्पर गुरु-वर, जय परमेष्ठि प्रकट भगवन श्री।
जय गुरु-मण्डल ज्ञान-गगन-घन, जय सत्-चित्-आनन्द सदन की।
माँगत वर 'बलराम' परम पद, छाँव कल्पतरु-वर उपवन की।।

गुरु-ज्ञान

मन सोच-समझ ले! दिल से विचार ले!
क्या सार है संसार में, यह भी तो जान ले।
कोटि जन्म के पुण्य से, नर-तनु मिला पवित्र।
इससे निज उद्धार का, कछु उपाय कर मित्र!।।
चित्र जगत का मृषा, इसमें तु क्यों फँसा।
कहते हैं सन्त वेद तो, इनकी भी मान ले।।
यह नश्वर संसार है, यहाँ रह नहिं कोय।
सेवा करि गुरुदेव की, निज स्वरूप ले जोय।।
क्यों व्यर्थ भटकता, क्यों भागता फिरता?
मति मान बैठ शान्ति से गुरु-ज्ञान जान ले।।
ज्ञान-रतन सागर भरा, तन त्रिकुटी में खोज।
मन विवेक वैराग्य से 'ॐ सोऽहं' को सोच।।
गुरु-सीख मान ले! भ्रम-भेद मिटा ले।
खलक में 'अलख' बसा, इसको पिछान ले।।

* शास्त्री राधेश्याम शर्मा, शाजापुर (म.प्र.)

दीक्षा का अर्थ एवं 'दीक्षा' के प्रकार

❖ 'कुल-मार्तण्ड' पण्डित योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री

दिव्य-भाव-प्रदानाच्च, क्षालनात् किल्बिषस्य च। दीक्षेति कथिता सद्भिर्भव-बन्ध-विमोचनी।।
दीयते परमा सिद्धिः, क्षीयते पाप - सञ्चयः। प्राप्यते परमं ज्ञानं, तेन दीक्षा इतीरिता।।

जिसके द्वारा साधक स्वकीय सम्पूर्ण पापों का नाश कर दिव्य भाव, परम सिद्धि तथा परम ज्ञान को प्राप्त होता है, उसे **'दीक्षा'** कहते हैं। **'दीक्षा'** में गुरु-देव अपनी ओर से शिष्य को आत्म-दान, ज्ञान-सञ्चार अथवा शक्ति-पात करते हैं, जिससे शिष्य के हृदय में सुषुप्त ज्ञान और शक्तियाँ उद्‌बुद्ध हो जाती हैं। इसी से शिष्य की समस्त शारीरिक अशुद्धियाँ लोप को प्राप्त होती हैं और शरीर शुद्ध होने के कारण वह सुर-सपर्या का पूर्णाधिकारी हो जाता है। यही **'दीक्षा'** का अर्थ है।

सामान्यतः **'दीक्षा'** तीन प्रकार की होती है— **१ शाम्भवी, २ शाक्ती** और **३ मान्त्री।**

'शाम्भवी दीक्षा' में गुरु-देव **'शिव-शक्ति'** के **'रक्त'** और **'शुक्ल'** चरणों का **'ब्रह्म-रन्ध्र'** में **'सहस्र-दल-कमल'** की कर्णिका पर शिष्य से चिन्तन कराते हैं और अनन्तर **'सहस्र-दल-पङ्कज'** से विनिःसृत **'सुधा-धारा'** से उसके बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार के मलों को दूर कर उसके **'सहस्रार'** को प्रफुल्लित कर देते हैं, जिससे ज्ञान-चक्षु सदा के लिए खुल जाते हैं। ऊपर कहे गए **'रक्त-शुक्ल'** चरणों से **मिश्र-चरण** और **निर्वाण चरणों** का भी उप-लक्षण है। चारों ही चरणों का चिन्तन करना चाहिए।

'शाक्ती दीक्षा' में **'मूलाधार'** से लेकर **'ब्रह्म-रन्ध्र'**-पर्यन्त शिष्य की **'चिद्रूपा शक्ति'** को जगाकर तथा उसे **'ब्रह्म-नाड़ी'** में से ले जाकर **'पर-शिव'** में मिला देते हैं। उसकी प्रकाश-लहरी से ही गुरु-देव पाप-पाशों को दग्ध कर देते हैं। यह शक्ति-प्रकाशन-रूपा **'शाक्ती दीक्षा'** कहलाती है, जिससे गुरु-देव शिष्य में अपनी शक्ति का सञ्चार कर देते हैं।

'मान्त्री दीक्षा' में शास्त्रोक्त शुभ दिन पर यथा-विधि मन्त्र दिया जाता है।

उपर्युक्त तीनों दीक्षाओं को एक वार में ही शिष्य के लिए देना मुख्य पक्ष है। इसमें निम्नलिखित **'परशुराम-सूत्र'** प्रमाण है। यथा— **"सर्वाश्च कुर्यात्"** अर्थात् तीनों दीक्षाओं को एक साथ करे।

'मान्त्री दीक्षा' को **'आणवी दीक्षा'** भी कहते हैं। वहुत से तन्त्र-ग्रन्थों में **'मान्त्री दीक्षा'** के दश भेद माने गए हैं। यथा— १ स्मार्ती, २ मानसी, ३ यौगी, ४ चाक्षुषी, ५ स्पार्शिकी, ६ वाचिकी, ७ मान्त्रिकी, ८ हौत्री, ९ शास्त्री और १० अभिषेचिका।

१ स्मार्ती— यह **'दीक्षा'** जव गुरु और शिष्य भिन्न-भिन्न देशों में स्थित हों, तब होती है। गुरु शिष्य का स्मरण करते हैं और उसके विविध पापों का विश्लेषण करके उन्हें भस्म

कर देते हैं, पुनः दिव्य पुरुष की सृष्टि कर **'भूत-शुद्धि'** में वर्णित **'लय-योग'**- क्रम से उसे **'परम शिव'** में स्थित कर देते हैं।

२ मानसी— इसका क्रम भी **'स्मार्ती'** के समान ही है। भेद केवल इतना ही है कि **'स्मार्ती दीक्षा'** में गुरु-शिष्य पास-पास नहीं रहते, किन्तु **'मानसी'** में दोनों की उपस्थिति आवश्यक है।

३ यौगी— **'यौगी दीक्षा'** में गुरु योग की रीति से शिष्य के शरीर में प्रवेश कर उसकी आत्मा को अपने शरीर में लाकर एक कर लेते हैं।

४ चाक्षुषी— इस **'दीक्षा'** में गुरु **'मैं परम शिव हूँ'—** ऐसा निश्चय करके अपनी दृष्टि द्वारा तपो-बल से शिष्य के सारे पापों का नाश कर देते हैं तथा शिष्य **'दिव्यत्व'** को प्राप्त हो जाता है।

५ स्पार्शिकी— इस 'दीक्षा' का विधान यह है कि गुरु पहले अपने दाहिने हाथ पर सुगन्ध द्रव्य द्वारा मण्डल का निर्माण करे, तत्पश्चात् वह उस पर **'शिव'** की पूजा करे। इस प्रकार वह **'शिव-हस्त'** हो जाता है। **'मैं परम शिव हूँ'—** यह निश्चय करके गुरु स्थिर भाव से हस्त-द्वारा शिष्य के मस्तक का स्पर्श करते हैं। उस **'शिव-हस्त'** के स्पर्श मात्र से शिष्य **'शिवत्व'** को प्राप्त हो जाता है।

६ वाचिकी— इस **'दीक्षा'** में गुरु पहले अपने गुरुदेव का ध्यान करते हैं। अपने मुख को उनका मुख समझकर शिष्य के शरीर में न्यासादि करके विधि-विधान के साथ **'मन्त्र-दान'** करते हैं।

७ मान्त्रिकी— इस **'दीक्षा'** में गुरु स्वयं अन्तर्न्यास, बहिर्न्यास आदि करके **'मन्त्र-शरीर'** हो जाते हैं तथा अपने शरीर में से शिष्य के शरीर में **'मन्त्र'** के संक्रमण का चिन्तन करते हैं।

८ होत्री, ९ शास्त्री— ये दोनों **'दीक्षा'**-सामाग्री आदि से सम्पन्न नहीं होतीं। भगवत्-पूजा के प्रेमी भक्त सेवा-परायण शिष्य को, उसकी योग्यता के अनुसार, शास्त्रीय पदों के द्वारा ये दोनों **'दीक्षाएँ'** दी जाती हैं।

१० अभिषेचिका— इस **'दीक्षा'** में पहले श्रीगुरुदेव एक घट में **'शिव'** और **'शक्ति'** की पूजा करते हैं, फिर उसके जल से शिष्य का **'अभिषेक'** करते हैं।

यहाँ पर **मान्त्री-दीक्षा** के दश भेदों का संक्षिप्त परिचय मात्र दिया गया है। इनमें न कोई विशेष विधान है और न इनका आजकल प्रचार ही है। उपर्युक्त सब दीक्षाएँ **'शक्ति-पात'** से सम्बन्ध रखती हैं, अतएव **'शक्ति-पात'** की ही भेद-रूपा इन्हें समझना चाहिए।

'शारदा-तिलक' आदि तन्त्र-ग्रन्थों में **'दीक्षा'** के चार भेदों का विस्तार से वर्णन मिलता है। वे चार भेद हैं— **१ क्रिया-वती, २ वर्ण-मयी, ३ कला-वती** और **४ वेध-मयी।**

'क्रिया-वती दीक्षा' में **'यथा नाम, तथा गुणः'** के अनुसार **'कर्म-काण्ड'** की पूर्ण क्रिया की

जाती है। १ **स्नान**, २ **सन्ध्या**, ३ **गणपत्यादि पञ्चाङ्ग-पूजन**, ४ **भू-शुद्धि**, ५ **भूत-शुद्धि**, ६ **प्राण-प्रतिष्ठा**, ७ **अन्तर्मातृका**, ८ **बहिर्मातृकादि न्यास** करके '**पद्धति**' के अनुसार '**स्व-देवता**' का पूजन कर '**हवन**' किया जाता है। अन्त में श्रीगुरु-देव '**आत्म-विद्या**' का दान करते हैं। शिष्य '**मन्त्र**' पाते ही अपने को धन्य मानता है।

'**वर्ण-मयी दीक्षा**' में—शिष्य के समस्त शरीर में विधान-पूर्वक '**अ**' से लेकर '**क्ष**'-कार-पर्यन्त समस्त वर्णों का '**न्यास**' किया जाता है। '**अ**'-कारादि वर्ण प्रकृति-पुरुषात्मक हैं और मानव-देह भी प्रकृति-पुरुषात्मक होने के कारण वर्णात्मक है। इस क्रिया से शिष्य का शरीर '**दिव्य**' बन जाता है। उसमें '**दिव्य-भाव**' उत्पन्न हो जाते हैं।

'**कला-वती दीक्षा**'— मनुष्य-देह में पाँच प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान हैं। उनके नाम निम्नलिखित हैं— १ **निवृत्ति**, २ **प्रतिष्ठा**, ३ **विद्या**, ४ **शान्ति** और ५ **शान्त्यतीत-कला-शक्ति**। उक्त शक्तियाँ **जानु**, **नाभि**, **कण्ठ**, **ललाट** और **शिखा**-पर्यन्त निवास करती हैं। अर्थात् **पाद-तल** से लेकर **जानु-पर्यन्त** '**निवृत्ति**' नाम की शक्ति वास करती है। **जानु** से लेकर **नाभि**-पर्यन्त '**प्रतिष्ठा**' नाम की शक्ति वास करती है। **नाभि** से **कण्ठ**-पर्यन्त '**विद्या**' नाम की शक्ति वास करती है। **कण्ठ** से **ललाट**-पर्यन्त '**शान्ति**' नाम की शक्ति वास करती है और **ललाट** से **शिखा**-पर्यन्त '**कला**' नाम की शक्ति वास करती है।

संहार-क्रम से '**निवृत्ति**' को '**प्रतिष्ठा**' में, '**प्रतिष्ठा**' को '**विद्या**' शक्ति में, '**विद्या**' शक्ति को '**शान्ति**' में, '**शान्ति**' शक्ति को '**कला**' में और '**कला**' को '**शिव**' में मिलाकर शिष्य '**शिव**'-रूप बना दिया जाता है। पुनः **सृष्टि-क्रम** से इसका विचार कर शिष्य **दिव्य-भाव** धारण कर लेता है और वह कृत-कृत्य हो जाता है।

'**वेध-मयी दीक्षा**'— इसमें '**मूलाधार**' से लेकर '**ब्रह्म-रन्ध्र**' पर्यन्त '**षट्-चक्रों**' का वेधन करते हैं। अतएव इसका नाम '**वेध-मयी**' दीक्षा पड़ा। प्रथम, शिष्य के शरीरान्तर्गत **षट्-चक्रों** का चिन्तन कर उनको क्रम से '**कुण्डलिनी-शक्ति**' में लय कर देते हैं। '**बिन्दु**' में '**षट्-चक्र**' लय करके, '**विन्दु**' का '**कला**' में, '**कला**' का '**नाद**' में, '**नाद**' का '**नादान्त**' में, '**नादान्त**' का '**उन्मनी**' में, उसका '**इष्ट-देव के मुख**' में और पुनः '**गुरु-मुख**' में संयोजन करके अपने साथ ही उस '**शक्ति**' को '**परमेश्वर**' में मिला देते हैं। गुरु-देव की परम कृपा से शिष्य का पाश-बन्धन कट जाता है। उसको दिव्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस '**वेध-मयी दीक्षा**' को ध्यान में रखकर '**पञ्च-स्तवी**' में श्रीमद्-भगवद्-धर्माचार्य ने श्रीजगदम्बा की स्तुति में निम्न-लिखित प्रकार से कहा है—

जन्तोरपश्चिम-तनोः सति कर्म-साम्ये, निःशेष-पाश-पटलच्छिदुरानिमेषात्।
कल्याणि! देशिक-कटाक्ष-समाश्रयेण, कारुण्यतो भवसि शाम्भव-वेध-दीक्षा।।

अर्थात्— हे माता! तू स्वयं अपने भक्त के ऊपर करुणा करके स्वयं देशिक (गुरु-देव) के कटाक्ष का आश्रय लेकर सेवक (शिष्य) के अखिल पाश-जाल का छेदन करनेवाली '**वेध दीक्षा**' बन जाती हो।

'पञ्चायतन-'दीक्षा' एवं 'क्रम-दीक्षा'

वैष्णव एवं शैवादि-सम्प्रदायों में **'पञ्चायतन-दीक्षा'** का तथा शाक्त सम्प्रदायों में **'क्रम-दीक्षा'** का विशेष रूप से प्रचलन है। इसका विवरण निम्न प्रकार है—

पञ्चायतन-दीक्षा— इस **'दीक्षा'** में **शक्ति, शिव, विष्णु, सूर्य** और **गणेश—** इन पाँचों की **'दीक्षा'** दी जाती है। पाँच देवताओं के अलग-अलग **पूजा-यन्त्र** बनाए जाते हैं। **इष्ट-देव** मुख्य माना जाता है और शेष गौण। **इष्ट-देव** का **यन्त्र** मध्य में होता है और अन्य देवों के **यन्त्र** चारों दिशाओं में रखे जाते हैं। इनके रखने के नियम **'यामल'** के अनुसार निम्न प्रकार हैं—

भवानीं तु यदा मध्ये, ऐशान्यामच्युतं यजेत्। आग्नेय्यां पञ्च-वक्त्रं च, नैर्ऋत्यां गण-नायकम्॥
वायव्यां तपनं चैव, पूजा-क्रम उदाहृतः॥

भवानी को **बीच** में स्थापित करे, तो **ईशान** में **विष्णु, आग्नेय** में **शिव, नैर्ऋत्य** में **गणेश** और **वायव्य** दिशा में **सूर्य** की पूजा करे।

यदा तु मध्ये गोविन्दं, ऐशान्यां शङ्करं यजेत्। आग्नेय्यां गण-नाथं च, नैर्ऋत्यां तपनं तथा॥
वायव्यामम्बिका चैव, भोग-मोक्षैक-भूमिकाम्॥

यदि **मध्य** में **विष्णु** को रखे, तो **ईशान** में **शिव, आग्नेय** में **गणेश** और **नैर्ऋत्य** में **सूर्य, वायव्य** दिशा में **शक्ति** का स्थापन करे।

शङ्करं तु यदा मध्ये, ऐशान्यामच्युतं यजेत्। आग्नेय्यां तपनं चैव, नैर्ऋत्यां गण-नायकम्॥
वायव्यां पार्वतीं चैव, स्वर्ग-मोक्ष-प्रदायिनीम्॥

यदि **मध्य** में **शिव** हों, तो **ईशान** में **विष्णु, आग्नेय** में **सूर्य, नैर्ऋत्य** में **गण-पति** और **वायव्य** कोण में **भगवती** को पूजना चाहिए।

आदित्यं च यदा मध्ये, ऐशान्यां शङ्करं यजेत्। आग्नेय्यां गण-नाथं च, नैर्ऋत्यां केशवं यजेत्।
वायव्यामम्बिका-देवीं, स्वर्ग-साधन-भूमिकाम्॥

यदि **मध्य** में **रवि-देव** हों, तो **ईशान** में **शिव, अग्नि** में **गणेश, नैर्ऋत्य** में **लक्ष्मी-पति** और **वायव्य** दिशा में **भगवती** को स्थापित करना चाहिए।

गण-नाथं यदा मध्ये, ऐशान्यां केशवं यजेत्। आग्नेय्यामीश्वरं चैव, नैर्ऋत्ये तपनं तथा॥
वायव्ये पार्वतीं चैव, पूजयेज्जगदम्बिकाम्॥

यदि **मध्य** में **गणेश जी** स्थापित हों, तो **ईशान** में **विष्णु, आग्नेय** में **सदा-शिव, नैर्ऋत्य** में **सूर्य** और **वायव्य** कोण में **जगदम्बिका** की पूजा करे।

'गणेश-विमर्शिनी' के अनुसार क्रम-भङ्ग करने से सिद्धि प्राप्त होने के स्थान में हानि होती है। **'रामार्चन-चन्द्रिका'** के आधार पर उक्त क्रम में कहीं-कहीं पर व्युत्क्रम भी हो सकता है।

कुछ देवताओं की दीक्षा लेने में **'पञ्चायतन-पूजा'** की आवश्यकता नहीं होती। **'तन्त्रसार'** में कहा भी है —

तारायां छिन्नमस्तायां, भैरव्यां मञ्जु-घोषके। श्यामलायां तथा रौद्रे, पञ्चाङ्गे नेष्यते बुधैः।।

श्यामा, भैरवी, छिन्नमस्ता, श्यामला (मातङ्गी) देवियों और **मञ्जु-घोष** तथा **रुद्र** आदियों के अर्चन में **पञ्चाङ्ग-पूजा** की आवश्यकता नहीं होती।

क्रम-दीक्षा— तन्त्र-शास्त्र में इसे बड़ा महत्त्व दिया गया है। इसकी बहुत बड़ी महिमा बताई गई है। इसमें **मन्त्र** का **षट्-चक्र-शोधन** नहीं होता। यह **दीक्षा** गुरु-देव की अद्वितीय कृपा से उपलब्ध होती है। इसमें दिवस, मास और वर्षों के क्रम से **'दीक्षा'** और **'अभिषेक'** होते ही रहते हैं, अतएव इसका नाम **'दीक्षा-क्रम'** है। जैसे पढ़नेवाला छात्र प्रति वर्ष अगली उच्च श्रेणी में चढ़ता जाता है और जो बहुत ही योग्य होता है, उसे वर्ष में 'दुहरी कक्षोन्नति' भी मिल जाती है, उसी प्रकार गुरु-देव शिष्य की योग्यता देखकर कभी एक वर्ष में और कभी वर्ष-पूर्व ही दो-तीन बार में एक दीक्षा से दूसरी दीक्षा के स्तर में पहुँचाते जाते हैं और अन्त में श्रीनाथ-कृपा द्वारा उसका दीक्षा-कार्य समाप्त हो जाता है, किन्तु यह **दीक्षा-क्रम** सामान्य लोगों के लिए नहीं है। अतः गुरु-देव और शास्त्रों के द्वारा ही इसका रहस्य जान सकते हैं।

'विश्वसार तन्त्र' में दीक्षा तीन प्रकार की बताई है— **१ महा-दीक्षा, २ दीक्षा** और **३ उपदेश।** बहुत से तन्त्र-कार **'महा-दीक्षा'** और **'दीक्षा'** को अन्य युगों के लिए बताते हैं और कलि-युग के लिए केवल **'उपदेश'** का ही विधान करते हैं। कहा भी है (विश्वसार तन्त्र)—

महा-दीक्षा तथा दीक्षा, उपदेशस्ततः परम्। युगे युगे च कर्तव्या, उपदेशः कलौ युगे।।

चन्द्र - सूर्य - ग्रहे तीर्थे, सिद्ध-क्षेत्रे शिवालये। मन्त्र-मात्र-प्रकथनं, उपदेश इहोच्यते।।

मन्त्रोपदेश अर्थात् 'दीक्षा'

शिष्य के गुरु से **'दीक्षित'** होने पर उसमें **'दिव्य भाव'** आ जाते हैं अर्थात् गुरु से शिष्य को **'दिव्य-भाव'** प्रदान किए जाने पर, उसके पाप धुल जाते हैं और वह **'दीक्षित'** होने पर संसार के बन्धनों से भी मुक्त हो जाता है। **'दीक्षा'** शब्द **दु-दाने** और **क्षि—क्षये** धातुओं से बनता है, अतः **'दिव्य भाव'** के प्रदान से और पापों के प्रक्षालन से **'दीक्षा'** कही जाती है (कुलार्णव तन्त्र)।

गुरु द्वारा शिष्य को **'दीक्षा'** में परम उत्कृष्ट सिद्धि दी जाती है, जिसके द्वारा शिष्य के पापों का क्षय (नाश) हो जाता है। **'पाप-क्षय'** होने पर शिष्य का अपने **'इष्ट'** में परम ध्यान लग जाता है अर्थात् वह ध्यान में इष्ट-दर्शन करने लग जाता है। अतः गुरु द्वारा दिया गया यह मन्त्रोपदेश **'दीक्षा'**- नाम से प्रख्यात है।

दीक्षा के भेदों का निरूपण

❖ 'कुल-मार्तण्ड' पण्डित योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री

दीक्षा आठ प्रकार की कही गई है। यथा— **१ स्पर्श-दीक्षा, २ दृग्-दीक्षा, ३ वेध-दीक्षा, ४ क्रिया-दीक्षा, ५ वर्ण-दीक्षा, ६ कला-दीक्षा, ७ शाम्भवी दीक्षा** और **८ वाग्-दीक्षा।**

(१) स्पर्श-दीक्षा

'दीक्षा' का पहला प्रकार **'स्पर्श-दीक्षा'** है। इसके बारे में लिखा है—

यथा पक्षी स्व-पक्षाभ्यां, शिशून् उद्धरते शनैः। स्पर्श-दीक्षोपदेशश्च, तादृशः कथितः प्रिये!।।

अर्थात् हे प्रिये! जैसे मादा पक्षी अपने पङ्खों से अपने बच्चों की रक्षा करती है और उनको बड़ा करती है, इसी प्रकार गुरु-देव अपना वरद हस्त शिष्य के मस्तक पर रखकर उसकी रक्षा करते हैं और उसके ज्ञान की वृद्धि करते हैं। यह **'स्पर्श-दीक्षा'** कही जाती है।

(२) दृग्-दीक्षा

स्वापत्यानि यथा मत्स्यो, वीक्षणेनैव पोषयेत्। दृग्भ्यां दीक्षोपदेशश्च, तादृशः परमेश्वरि!।।

अर्थात् हे परमेश्वरि! जिस प्रकार मछली अपने बच्चों को दूर से देखकर ही उनका संरक्षण और पालन-पोषण करती है, एवमेव सद्-गुरु भी अपने शिष्य को अपने पास बैठाकर अपनी दिव्य दृष्टि से (शिष्य की आँख से आँख मिलाकर) शिष्य में ज्ञान का सञ्चार कर देते हैं अर्थात् शिष्य की ओर देखने मात्र से उसमें **'शक्ति-पात'** करते हैं।

(३) वेध-दीक्षा

यथा कूर्मः स्व-तनयान्, ध्यान-मात्रेण पोषयेत्। वेध-दीक्षोपदेशश्च, मानुषस्य तथा विधिः।।

अर्थात् जैसे कछुए के बच्चों की माता अपने बच्चों का केवल ध्यान रखने से ही पालन-पोषण करती है, तथैव श्री गुरु-देव ध्यान मात्र करने से शिष्य में **'शक्ति-पात'** (शक्ति का सञ्चार) कर उसे कृतार्थ कर देते हैं अर्थात् उसका कल्याण कर देते हैं।

इस दीक्षा के होने पर तत्काल ही शिष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, किन्तु इस दीक्षा में श्री गुरु-देव की परम कृपा और शिष्य का कर्म-साम्य दोनों का ही महत्त्व है। **'अम्बा-स्तव'** में लिखा है—

जन्तोरपश्चिम-तनोः सति कर्म-साम्ये, निश्शेष-पाश-पटलच्छिदुरानिमेषात्।
कल्याणि! देशिक-कटाक्ष-समाश्रयेण, कारुण्यतो भवसि शाम्भव-वेध-दीक्षा।।

अर्थात् जिस मनुष्य (शिष्य) का यह चरम जन्म होता है— अन्तिम जन्म होता है तथा जिसका कर्म-साम्य होता है, उसी के ऊपर श्री गुरु की करुणा द्वारा सम्पूर्ण पाश (बन्धन) अर्थात् अष्ट-पाश तथा पाशान्तरों (दूसरे बन्धनों) को क्षण मात्र में काटनेवाली देशिक (गुरु) के कटाक्ष द्वारा अर्थात् शिष्य की दृष्टि से दृष्टि मिलानेवाली **'वेध-दीक्षा'** होती है।

(४) क्रिया-दीक्षा

क्रिया-दीक्षाऽष्टधा प्रोक्ता, कुल-मण्डप-पूर्विका। कलशादि-समायुक्ता, कर्तव्या गुरुणा बहिः।।

अर्थात् **'क्रिया-दीक्षा'** आठ प्रकार की बताई गई है। संक्षिप्त रूप में पहले विधि-पूर्वक षडध्व-शोधन किया जाता है, तदनन्तर गुरु-देव अपने शरीर में ब्रह्म-रन्ध्रस्थ **'चित्-शक्ति'** को क्रम-पूर्वक निकाल कर शिष्य के भीतर हृदय में उसका प्रवेश कराते हैं।

(५) वर्ण-दीक्षा

वर्ण-दीक्षा त्रिधा प्रोक्ता, द्वि-चत्वारिंशदक्षरैः। पञ्चाशद्-वर्णकैर्देवि! द्वि-षष्टि-लिपिभिस्तु वै।।

अर्थात् शिष्य के शरीर में **'मातृका-रूपिणी भगवती'** के ४२ वर्णों से अथवा ५० अक्षरों से या ६२ भूत-लिपियों से न्यास द्वारा उसमें **'देवता-भाव'** पैदा किया जाता है अर्थात् **मातृका-न्यास** और **इष्ट-मन्त्र-न्यास** द्वारा शिष्य-शरीर में **'देवत्व'** का अवतरण कराया जाता है।

(६) कला-दीक्षा

कला-दीक्षा च विज्ञेया, कर्तव्या विधि-वत् प्रिये! निवृत्तिर्जानु-पर्यन्तं, तलादारभ्य संस्थिता।।
इयं प्रोक्ता कुलेशानि! दिव्य-भाव-प्रदायिनी।

अर्थात् कलाओं के न्यास-पूर्वक यह **दीक्षा** की जाती है। **'कला-न्यास'** निम्न प्रकार करना चाहिए—

पाद-तलात् जानु-पर्यन्तं ॐ निवृत्त्यै कलायै नमः। जान्वोर्नाभि-पर्यन्तं ॐ प्रतिष्ठायै कलायै नमः। नाभेः कण्ठ-पर्यन्तं ॐ विद्यायै कलायै नमः। कण्ठाल्ललाटान्तं ॐ शान्त्यै कलायै नमः। ललाटाद् ब्रह्मरन्ध्रप्यर्यन्तं ॐ शान्त्यतीतायै कलायै नमः। ब्रह्म-रन्ध्रात् आललाटं ॐ शान्त्यतीतायै कलायै नमः। ललाटात् कण्ठ-पर्यन्तं ॐ शान्त्यै कलायै नमः। कण्ठात् नाभि-पर्यन्तं ॐ विद्यायै कलायै नमः। नाभेर्जानु-पर्यन्तं ॐ प्रतिष्ठायै कलायै नमः। जान्वोः पाद-पर्यन्तं ॐ निवृत्त्यै कलायै नमः।

उक्त **'कला-दीक्षा'** साधक को **'दिव्य-भाव'** प्रदान करनेवाली है। इससे पाँच महा-भूतों, कला-शक्ति को **'बेध'** द्वारा शिष्य के शरीर में प्रवेश कराया जाता है। यह कला पाँच और अट्ठाइस भेदों द्वारा दो प्रकार की मानी जाती है।

(७) शाम्भवी-दीक्षा

गुरोरालोक-मात्रेण, भाषणात् स्पर्शनादपि। सद्यः संजायते ज्ञानं, सा दीक्षा शाम्भवी मता।।

अर्थात् श्रीगुरुदेव के कृपा-पूर्वक देखने से अथवा सम्भाषण (वार्तालाप) से तथा स्पर्श (प्रेम-पूर्वक शिष्य को छूने मात्र) से शिष्य के हृदय में जो एकदम (तत्काल) ही ज्ञान होने लगता है, उसे **'शाम्भवी दीक्षा'** कहते हैं।

(८) वाग्-दीक्षा

मनोदीक्षा द्विधा प्रोक्ता, तीव्रा तीव्र-तमाऽपि च। पाप-मुक्तः क्षणात् शिष्यः, छिन्न-पाशस्तथा भवेत्।
ब्रह्म-व्यापार-निर्मुक्तो, भूमौ पतति तत्क्षणात्। साक्षात्-दिव्य-भावोऽसौ, सर्वं जानाति शाम्भवि!।।

अर्थात् हे शाम्भवि! वाणी द्वारा जो **'मन्त्र-दीक्षा'** दी जाती है, उसे **'वाग्-दीक्षा'** कहते हैं। उसके **'तीव्रा'** और **'तीव्र-तमा'** नामक दो भेद हैं।

जिस समय षडध्व-ज्ञानी गुरु शिष्य के जानु, नाभि, हृदय आदि षट्-स्थानों में भुवन, तत्त्व, कला, वर्ण, पद और मन्त्राध्व का चिन्तन कर गुरूपदिष्ट मार्ग से वेध कर मन्त्र प्रदान करता है, उसी समय शिष्य सब पापों से मुक्त होकर तथा पाश-रहित होकर भूमि पर लेटता है और उसे **'दिव्य-भाव'** प्राप्त होता है।

इस प्रकार वेध-द्वारा **'वाग्-दीक्षा'** से दीक्षित पुरुष (शिष्य) साक्षात् **'शिव-रूप'** हो जाता है और उसको पुनः जन्म लेकर संसार में नहीं आना पड़ता। यही **'वाग्-दीक्षा'** के द्वितीय भेद **'तीव्र-तरा दीक्षा'** का रहस्य है।

'दीक्षा-भेद' के उपर्युक्त वर्णन से ही **'दीक्षा'** की इति-श्री नहीं समझनी चाहिए। आगे **क्रम-दीक्षा, मेधा, महा-मेधा** आदि दीक्षाएँ भी हैं, जिनके अन्तर्गत **शाक्ताभिषेक, पूर्णाभिषेक** आदि आठ प्रकार के **अभिषेक** और **वेदाचार** आदि **सात आचार,** जिनमें **'कौलाचार'** सर्वोत्तम माना गया है, वर्णित हैं। ये सात आचार **पशु-भाव, वीर-भाव** और **दिव्य-भाव**—इन तीन भावों के अन्तर्गत आते हैं।

* * *

'दीक्षा' और उसकी आवश्यकता

आध्यात्मिक **'साधना'** में प्रविष्ट होने से पूर्व हमें सर्व-प्रथम **'दीक्षा'** की आवश्यकता प्रतीत होती है? परन्तु क्यों?

मनुष्य को अपने पूर्व-जन्म के संस्कारों और वर्तमान जन्म के अधिकारों का तो पता रहता नहीं, अतः वह अपने उपयुक्त **'साधना-पथ'** नहीं चुन पाता, क्योंकि उसमें उतनी बुद्धि ही नहीं रहती। कोई-कोई साधक तो अपने मित्र को साधना करते देख, या किसी के द्वारा किसी भी साधना की प्रशंसा सुनकर साधना आरम्भ कर देते हैं, परन्तु उनके मन में संशय उठते रहते हैं कि यह ठीक है या नहीं। जब उनको सिद्धि में विलम्ब दिखाई पड़ता है, अथवा किसी दूसरी साधना को अधिक उत्तम समझते हैं, तो प्रथम साधना छोड़ दूसरी साधना आरम्भ कर देते हैं। आज **'काली'** की साधना, तो कल **'कृष्ण'** की, परसों **'हनुमान'** की, नरसों **'शिव'** की!

इस प्रकार न तो किसी भी एक की पूर्ण साधना होती है और न ही सफलता मिलती है। अतएव **'साधना-पथ'** पर अग्रसर होने के लिए दृढ़ विश्वास की आवश्यकता है, परन्तु ऐसा विश्वास किस प्रकार हो? इसी के लिए **'दीक्षा'** की आवश्यकता होती है।

—श्री देवेन्द्रनाथ भट्टाचार्य

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल रचित अनूठी चर्चा

साधक का संवाद

२. उपलब्धि

कलकत्ते में काम करते-करते जब मन उचटने लगता था, तब मैं शहर में **अन्नदा दादा** के यहाँ ही जाकर अपने मन को राह पर लाया करता था। **दादा** बङ्गाली होकर भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने का गर्व करते थे और चूँकि मेरा भी गोत्र भरद्वाज ही था, इससे वे मुझे अपना छोटा भाई ही समझते थे। मैं भी उनके परिवार से ऐसा घुल-मिल गया था कि बङ्गाली तक भी मुझे बङ्गाली ही समझने लगे थे।

अन्नदा बाबू के यहाँ मैं पूरा-का-पूरा बङ्गाली ही हो जाता था। उनके यहाँ मैं कनवजिया-पने की सारी बातें भुला दिया करता था। उनका तथा उनके कुटुम्बियों का सच्चा प्रेम-व्यवहार ही इसका मूल कारण था। इस बार जब मैं उनके यहाँ गया, तब **दादा** घर पर नहीं थे, वे अपनी जमींदारी में गए हुए थे। अतएव उनके पुत्र **बीरू** ने ही मेरा स्वागत-सत्कार किया और मेरे साथ वैसा ही व्यवहार किया, जैसा एक पुत्र अपने पिता के साथ करता है। **दादा** के न होने से मैंने शीघ्र ही शहर को लौट जाना चाहा, परन्तु **बीरू** ने और उनसे अधिक **भाभी** ने इतना अधिक जोर दिया कि मुझे **दादा** के लौट आने तक वहाँ ठहरे रहना पड़ा।

आखिर एक दिन **दादा** लौटकर आ गए। वे रात की गाड़ी से आए थे, अतएव मुझे उनका आना ज्ञात न हो सका—मैं सो गया था। जब सोकर उठा, तब **बीरू** ने ही आकर कहा कि—'कल रात की गाड़ी से **दादा** आ गए और वे यह जानकर बहुत ही प्रसन्न हुए कि आप यहाँ हैं। वे अपने साथ एक **भैरवी** लाए हैं। कहते थे कि इनसे **शर्मा जी** को मिलाऊँगा।' यह कहकर **बीरू** हँसने लगा।

मैंने पूछा—**बीरू बाबू,** तुम हँस क्यों रहे हो?

'मैंने **दादा जी** से कहा था कि **चाचा जी** तो **भैरव-भैरवियों** के फेर में रहते नहीं हैं, तब इनसे भेंट कराना बेकार होगा। मेरे ऐसा कहने पर **दादा जी** बिगड़ पड़े और मैं भाग खड़ा हुआ। वही बात याद हो आने से मुझे हँसी आ गई।'

'बात तो तुमने ठीक ही कही है। **दादा जी** भी तो जानते हैं कि मैं साधु-सन्तों से दूर रहता हूँ, परन्तु जब उन्होंने कहा है, तब उनकी आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा।'

थोड़ी ही देर के बाद **दादा जी** भी अपने कमरे से बाहर निकले। मैंने सविधि उनकी चरण-धूलि लेकर अपने माथे से लगाई। उन्होंने मुझे छाती से लगा लिया और उनकी आँखों में सदा की भाँति आँसू छलछला आए। उन्होंने कहा—**शर्मा,** तुम इस बार खूब आए। रात में आने पर जब **बीरू** ने कहा कि तुम यहीं हो, तभी तुमको जगाकर तुमसे मिलना चाहा, पर तुम्हारी **भाभी** ने कहा कि अभी सोए हैं, कच्ची नींद जगाना ठीक नहीं। अच्छा, तुम अब जल्दी स्नान-ध्यान से निपट लो। मैं एक **भैरवी** को लाया हूँ। उनसे मिलकर तुम बहुत प्रसन्न होगे।

'हाँ **दादा, बीरू** भी यही कह रहा था।' और मैं **बीरू** के साथ स्नान-घर चला गया। **बीरू** ने कहा — **चाचा जी,** जान पड़ता है, दादा जी **भैरवी** के चक्कर में आ गए हैं। पहले वे इन **भैरवियों** को घर के पास भी फटकने नहीं देते थे। इस बार तो ये **भैरवी जी** घर के भीतर पूजा-घर के पास कमरे में ठहराई गई हैं! और जब **माँ** उनकी सारी

सुख-सुविधा कर चुकीं, तभी **दादा जी** हटे!

मैंने पूछा— **भैरवी जी** कैसी जान पड़ती हैं?

'जैसी सब **भैरवियाँ** दिखती हैं, वैसी ही वे भी हैं! वही कषाय-कोपीन, वही रुद्राक्ष-स्फटिक आदि की मालाएँ, वही त्रिशूल आदि। कोई विशेषता मुझे तो नहीं दिखी।'

'अरे भाई! कोई बातचीत तो की होगी ही, इच्छा-अनिच्छा तो प्रकट की ही होगी।'

'सो कुछ नहीं। मां ने पद-धूलि ली, तब सिर हिला दिया। इसके बाद उनके साथ चुपचाप अपने कमरे को चली गई। कुछ खाया-पिया भी नहीं।'

हम लोग स्नान-पूजा करके दरवाजे की बैठक में आ बैठे। जल-पान का सामान लिए हुए **दादा जी** पहले से ही बैठे थे।

जलपान करते समय **दादा जी** ने अपनी जमींदारी की बातें छेड़ दीं। उसी सिलसिले में उन्होंने **भैरवी मां** का भी हाल बताया। अन्त में उन्होंने कहा—**शर्मा,** तुम्हें अच्छी तरह मालूम है कि मैं इन साधु-सन्तों का महत्त्व नहीं मानता। इनके यहाँ आते-जाते तुमने मुझे कभी न देखा होगा, परन्तु यह **भैरवी** अद्‌भुत है। तुम स्वयं ही जान लोगे। दस बजे दर्शन कराऊँगा।

यह कहकर वे भीतर चले गए। इधर हम अखबार पढ़ने में लग गए। ठीक दस बजे **बीरू** मुझे बुलाने आया। मैं उसके साथ भीतर गया। पूजा-घर के पासवाले कमरे में जाकर देखा, दादा जी **भैरवी** से बैठे बातें कर रहे हैं। **भैरवी** को सविधि प्रणाम कर मैं वहीं एक ओर एक आसन पर बैठ गया। **भैरवी** को मेरा परिचय देते हुए **दादा** ने कहा—यह मेरा छोटा भाई है। शहर में रहता है और व्यापार करता है। इसकी कपड़े की दूकान खूब चलती है।

भैरवी ने मेरी ओर दृष्टि-पात किया। इसके बाद **दादा** को लक्ष्य करके कहा— यह तुम्हारा छोटा भाई है! यह तो बङ्गाली नहीं जान पड़ता। यह तो पछाँही आदमी जान पड़ता है।

कुछ खिन्न-से होकर **दादा जी** ने कहा— इससे क्या? हम दोनों ही कान्यकुब्ज हैं और हम दोनों स-गोत्र हैं। तब भाई नहीं हैं, तो फिर क्या हैं?

हँसकर **भैरवी** ने कहा—'आपका यह विचार सर्वथा ब्राह्मणोचित है। आप सचमुच धन्य हैं।' फिर मेरी ओर मुँह करके उन्होंने कहा—आशा है, आपने मेरे कथन का वैसा अर्थ न लिया होगा। महाशय! मेरा भी भरद्वाज-गोत्र है और जमीन्दार महाशय के सिद्धान्त के अनुसार मैं आप दोनों की बहन हुई।

दादा जी ने कहा— नहीं-नहीं! आप तो साक्षात् जगदम्बा-स्वरूपा हैं। इस तरह के सम्बन्ध तो हम जैसे सांसारिक लोगों के लिए ही हैं।

यह कहकर उन्होंने हम दोनों की ओर देखकर कहा— तुम लोग **मां जी** के पास बैठकर बातचीत करो। मैं कुछ ही देर में आता हूँ। एक जरूरी काम है।

यह कहकर **दादा जी** चले गए। **भैरवी मां** ने हँसकर विशुद्ध हिन्दी में मुझसे पूछा—भाई भारद्वाज जी, पच्छिम में तुम्हारा गाँव किस जिले में है? तुम्हारा 'आस्पद' क्या है?

उनकी शुद्ध बोल-चाल की हिन्दी तथा देशी उच्चारण सुनकर मैं चकित रह गया। मैंने विनम्रता के साथ अपना 'आस्पद' बता दिया और कहा— **मां जी,** आप तो बहुत साफ हिन्दी बोलती हैं, और वह भी मेरे बैसवाड़ी-जैसी! क्या आप कभी वहाँ रही हैं?

'अवधूत तो सभी जगह आते-जाते रहते हैं। उनका अनेक बोलियों के बोल लेने का अभ्यास रहता है।'

'आप ठीक कहती हैं, पर आप तो उस तरह हिन्दी बोलती हैं, मानो आपकी मातृ-भाषा ही हो।'

'तुम्हारा अनुमान बहुत-कुछ ठीक है। हम बङ्गालियों की मातृ-भूमि कान्यकुब्ज देश ही है, अतएव वहाँ की बोली बोल लेना हम लोगों के लिए असम्भव नहीं है।' यह कहकर वे भगवती का एक गीत गा पड़ीं। गीत **रामप्रसाद साधक** का था और उनके मुँह से वह खूब बन पड़ा। गीत के समाप्त होने पर मैंने डरते-डरते पूछा—**मां जी,** आप तो शाक्तोपासिका ही होंगी?

'उपासना आदि की चर्चा तो उपासक ही कर सकते हैं। तुम तो उपासक नहीं जान पड़ते।'

मैंने हत-प्रभ-सा होकर कहा— उपासक तो नहीं हूँ, पर जिज्ञासु अवश्य हूँ। जिज्ञासा का समाधान होने पर ही लोग उपासक होते हैं।

'तुम्हारी यह जिज्ञासा, यदि मेरा अनुमान ठीक है, प्रौढ़ता को प्राप्त हो गई है और उसका समाधान आज तक नहीं हो पाया। ऐसी दशा में अब तुम्हें अपने जिज्ञासु-रूप को छोड़ देना चाहिए। तभी तुम्हारा कल्याण होगा।'

भैरवी के इस स्पष्ट कथन से मैं मर्माहत-सा हो उठा। मैंने कुछ-कुछ कर्कश-से स्वर में कहा—परन्तु **मां जी!** मुझे आज तक ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिला, जिसने मेरा भले प्रकार समाधान किया हो।

भैरवी ने भी मेरे ही स्वर-में-स्वर मिलाकर उत्तर दिया—तो उसकी आशा तुम मुझसे ही कैसे कर सकते हो? मैं एक साधारण **भैरवी** हूँ। न शास्त्र का ज्ञान है, न अनुभव का ही बल है। **गुरुदेव** ने जो मार्ग बता दिया, उसी को पकड़े रहने का प्रयत्न करती रहती हूँ।

'वही तो मैं जानना चाहता हूँ कि वह वस्तु क्या है, जिसके आकर्षण से आपने सांसारिक सुखों को लात मार कर संन्यास का मार्ग ग्रहण किया है।'

'यह सब तो प्रश्नोत्तरों से नहीं जान पाओगे। इसके लिए तो साधक बनना पड़ेगा।'

'और सो भी बिना पहले से समझे-बूझे!'

'और नहीं तो क्या! इसके लिए अपने-आपको **गुरुदेव** को सौंप देना पड़ेगा और जो-जो आदेश वे करें, उसका अक्षर-अक्षर पालन करना पड़ेगा। तभी कोई साधना के मार्ग पर चल सकेगा।'

'मैं तो ऐसे **गुरुदेव की खोज** में बरसों से लगा हुआ हूँ, पर पहले से मैं जान लेना चाहता हूँ कि मुझे क्या करना होगा, परन्तु प्रयत्न करने पर भी ऐसा व्यक्ति मुझे आज तक नहीं मिला।'

'मेरी समझ में तुम अभी उसके पात्र नहीं हो। जब तुम उसके अधिकारी हो जाओगे, तो **गुरुदेव** के मिलने में एक क्षण की देरी न होगी।'

'**पात्र** होने—**अधिकारी** बनने का क्या उपाय है?'

'यही कि स्व-धर्म का निष्ठा के साथ पालन करना, कुल-धर्मानुसार देवार्चन और पितृ-कर्म आदि कर्मों को श्रद्धा से करना।'

'यथा-शक्ति यह सब मैं बराबर करता रहता हूँ। सुना है, मेरे पूर्वज **शाक्त** थे, पर मुझे उसके प्रति वैसी श्रद्धा नहीं है।'

'सो क्यों? शास्त्र का तो आदेश है कि स्व-धर्म का ही पालन करना चाहिए।'

'**शाक्त** लोग अपनी पूजा-अर्चा में **मद्य-मांस** आदि का प्रयोग करते हैं और मैं इन दोनों वस्तुओं को फूटी आँख भी देखना नहीं चाहता।'

मेरे इस उत्तर से **भैरवी** भी बड़े जोर से हँस पड़ीं और इतना हँसीं कि उनकी आँखों में आँसू आ गए। अपने आँसू पोंछते हुए उन्होंने कहा—'तब तुम तो अपने **गुरु** आप ही बने हुए हो! तुमको किसी दूसरे **गुरु** की क्या आवश्यकता है?' यह कहकर वे कुछ गम्भीर हो गईं और उन्होंने धीरे-धीरे कहा—देश का वायु-मण्डल ही कुछ ऐसा हो गया है! लोगों को अपनी बातें आज कहाँ पसन्द हैं? सारा देश विलायती चश्में लगाए हुए है। जिस **मद्य-मांस** से तुम्हें घृणा हैं,

उससे भी गर्हित **मद्य-मांस** आज इस देश के महा-जन हँस-हँसकर आत्म-सात् करते रहते हैं! यह तो सब कहने भर की बातें हैं। मैं तुमको नहीं कहती। तुम्हारी तरह के कुछ लोग भले ही 'सुधार-वाद' के अनुयायी हों, पर उनका भी वह 'सुधार-वाद-प्रेम' केवल जबानी ही दिखाई देता है। इससे मेरा कहना है कि अपनी शक्ति को देखकर काम उठाना चाहिए। हमारा यह देश धर्म-देश है, अतएव सभी को अपने कुल-धर्मानुसार शास्त्र का मत मानना चाहिए। यही एक कल्याण-प्रद मार्ग है।

भैरवी मां यह कहकर **काली मां का नाम-कीर्तन** करने लगीं। इतने में ही दादा जी भी आ गए। उन्होंने आते ही कहा— **मां जी,** प्रसाद तैयार है। आज्ञा हो, तो ले आऊँ।

उन्होंने कहा—जो तुम्हारी इच्छा।

इस पर हम सब लोग वहाँ से चले आए। जब **मां जी** प्रसाद पा चुकीं, तब **भाभी** ने हम लोगों को भोजन करने के लिए बुलाया। भोजन के समय बात-चीत के सिलसिले में **दादा जी** ने **भैरवी माँ** की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि ऐसी निष्ठा-वाली एवं सच्चरित्र **भैरवी** उन्होंने आज तक नहीं देखी। मुझसे उन्होंने कहा—**शर्मा,** तुम इनका सत्सङ्ग करके अपनी शङ्काओं का भले प्रकार समाधान कर सकते हो।

मैंने कहा— परन्तु **दादा जी,** वे तो मुझे उसका पात्र ही नहीं समझती हैं।

'नहीं-नहीं, तुम निश्चिन्त रहो। वे भले प्रकार तुम्हारी शङ्काओं का समाधान कर देंगी। मैं उनसे कह दूँगा।'

'कब तक रहेंगी? मुझे तो आज ही शहर में जाना पड़ेगा। और वहाँ से छः-सात दिन के पहले नहीं लौट सकूँगा।'

'कोई चिन्ता नहीं। ये **दुर्गा-पूजा** के बाद ही यहाँ से जायँगी। इनको एक विशेष मतलब से यहाँ लाया हूँ।'

भोजन करने के बाद हम लोग बाहर आए। कुछ देर विश्राम किया। सन्ध्या होने के लगभग मेरी मोटर आ गई। **दादा जी** की चरण-धूलि लेकर जब मैं जाने लगा, तब **भाभी** ने कहा— **शर्मा,** यहाँ फल वैसे नहीं मिलते हैं। अब जब आना, तो अपने साथ कुछ अच्छे फल अवश्य ले आना।

मैंने आज्ञा शिरोधार्य की और उनके चरण-स्पर्श कर कार पर आ बैठा। यद्यपि मैं शहर चला आया, तो भी मेरा मन **भैरवी मां** की ओर खिंचा रहा। मैं उन्हें एक क्षण को भी नहीं भूल सका। वे यथा-नाम तथा गुण ही थीं। उनके मुख की तपो-पूत कान्ति में अद्भुत आकर्षण तो था ही, उनकी वाणी में तादृश ही प्रभाव था। उनके पास रहकर कुछ दिन तक सत्सङ्ग करने की बार-बार इच्छा होती थी, परन्तु व्यवसाय के मोह के कारण नहीं जा सका। अन्त में सप्तमी के दिन **दादा** ने कहला भेजा कि **अष्टमी का सवेरा** यहीं हो। अतएव सवेरे उठने पर मैंने गाड़ी में फल-फूल आदि धराए और उनके घर की राह ली।

जब मेरी कार **दादा जी** के बँगले के पोर्टिको में जा खड़ी हुई, मैंने देखा—वे बरामदे में खड़े मेरी प्रतीक्षा-सी कर रहे हैं। मैंने उतरकर चरण-स्पर्श किए। उन्होंने कहा— 'मैं जानता था, तुम सवेरे ही आ जाओगे। अच्छा, आज के यज्ञ में तुमको और **बीरू** को भी शामिल करूँगा। इसके लिए तुम दोनों को निराहार-व्रत करना पड़ेगा। गङ्गा-स्नान कर **भैरवी मां** के पास रहकर आज दिन भर **धर्म-चर्चा** ही में रहना। मैं तो आज पूजा के काम में व्यस्त रहूँगा। भेंट और बात-चीत बहुत कम होगी।' यह कहकर वे तो स्नान के लिए चले गए। मैं **बीरू** के कमरे में चला गया। **बीरू** ने उठकर मेरे चरण छुए। मैंने कहा— क्यों **बीरू,** यह यज्ञ कैसा हो रहा है? **दादा** ने निराहार रहने की आज्ञा दी है। कैसे रह सकेंगे?

उसने हँसकर कहा— **दादा** आजकल अहर्निश **धर्म-चर्चा** में लगे रहते हैं। हम लोगों को

भी अपनी ही राह ले जाना चाहते हैं।

देर तक इसी तरह बात-चीत होती रही। इसके बाद स्नान-पूजा करके हम दोनों **भैरवी मां** के पूजा-घर में गए। उनको सविधि प्रणाम कर आसन पर बैठ गए।

भैरवी मां ने कुशल-प्रश्न पूछने के बाद कहा—'क्यों **शर्माजी,** इतने दिन कहाँ रहे? उस दिन का वार्तालाप अधूरा ही छोड़कर आप तो एकदम गायब ही हो गए! क्या उसे मन-बहलाव के लिए ही छेड़ा था?' यह कहकर वे हँसने लगीं।

मैंने विनीत भाव से कहा— नहीं **मां जी,** ऐसी बात नहीं है। मैंने जिज्ञासु-भाव से ही उसे छेड़ा था। आज-कल दूकान का काम बढ़ जाता है। इसलिए नहीं आ सका।

'मैंने यों ही कहा है। मैं जानती हूँ, आपको **धर्म से अनुराग** है। **शाक्त-धर्म** का रहस्य तो आपको अवश्य ही जानना चाहिए। वह तो आपका **कुल-धर्म** है।'

'हाँ, **माँ जी!** हम लोग **शाक्त** हैं और हमारे यहाँ **भगवती की पूजा** बराबर होती रहती है। यह अवश्य है कि हम लोग उसका विधि-विधान नहीं जानते। इससे पुरोहित जी के द्वारा स्त्रियाँ ही सब कुछ कर-धर लेती हैं।'

'आप जैसे पढ़े-लिखे आदमी के लिए विधि-विधान जान लेना सुगम है, परन्तु उसे जानें, तो कैसे जानें? **तान्त्रिक दीक्षा** से घबराते जो हैं।'

'हाँ, **मां जी!** लोक-निन्दा का डर है। फिर मन भी गवाही नहीं देता। आप जानती ही हैं कि **तान्त्रिक पूजा** के सम्बन्ध में लोगों की कैसी धारणा है।'

'परन्तु वह धारणा तो भ्रान्ति-पूर्ण है और भ्रान्ति की धारा में बहे चलना तो बुद्धिमानी का काम नहीं है। उदाहरण के लिए **शक्ति-पूजा** की बात को ही मैं लेती हूँ। उसके सम्बन्ध में जो अपवाद फैला हुआ है, वह क्या ठीक है? कम-से-कम **हिन्दू-तन्त्रों** में तो वह बात नहीं है। कौन नहीं जानता कि हिन्दू-स्त्री के लिए पतिव्रत-धर्म कितने महत्त्व का है। तब **तन्त्र-मार्ग** उस धर्म का कैसे त्याग कर सकता है? मैं जानती हूँ कि **संग्रह-ग्रन्थों** में कुछ ऐसे वचन हैं, जिनसे जान पड़ता है कि **चक्र-पूजा** में **परकीया** का ग्रहण करना वैध है, परन्तु यह सत्य है कि वे वचन **हिन्दू-तन्त्रों** के नहीं हैं और न **हिन्दू-शाक्तों के चक्रों** में **परकीया** की बात तो अलग रही, **स्वकीया** का भी उस रूप में ग्रहण नहीं होता है, जिसकी चर्चा करके लोग **शाक्तों की निन्दा** करते हैं। आखिर **शाक्त** भी तो हमीं-तुम्हीं लोग हैं।'

'तो क्या यह प्रवाद मिथ्या है? इसका कोई आधार नहीं है?'

'आधार की बात मैं कह चुकी। यह दुनियाँ बहुत बड़ी है। यहाँ क्या नहीं हो सकता, परन्तु जहाँ तक मैं जानती हूँ, **तान्त्रिक धर्म** में वह सब कुछ भी नहीं है, जिसको लेकर लोग उसकी निन्दा करते हैं। उसका तो मूल सिद्धान्त यह है कि **पशु-भावापन्न** मनुष्य को **देवता** बना देना। उसकी **पशु-भावनाओं** को संयम में रखकर उसको **देवत्व** के मार्ग पर अग्रसर करना, यहाँ तक कि वह **दिव्य-भावापन्न** हो जाय। **वासनाओं की भावना** उसमें न रह जाय और वह **देव-भाव** को प्राप्त कर ले। ऐसे **धर्म-मार्ग** के सम्बन्ध में जो लोग अनर्गल बातें करते हैं, उसका कारण उनका अज्ञान है।'

'और **मद्य-मांस**?'

भैरवी मां हँस पड़ीं। जब उनकी हँसी बन्द हुई, उन्होंने कहा— **'शाक्तों** में **मद्य-मांस** का ग्रहण पान और भोजन. के रूप में नहीं है। चरणामृत-पान तो **विन्दु-रूप** में है और देवता के प्रसाद में २-४ बताशे ही मिलते हैं, यह कौन नहीं जानता। इससे सुनी-सुनाई बातों के फेर में नहीं आना चाहिए। धर्म को जब धर्म के रूप में देखोगे, तब सारी वस्तु-स्थिति आपकी समझ में आ जाएगी। आज जो **महा-यज्ञ** यहाँ होगा, उसे

जब आप देखेंगे, तब आपका सारा सन्देह दूर हो जाएगा।' यह कहकर **भैरवी मां** गम्भीर-सी हो गईं और वे बार-बार **जगदम्बा का नाम-स्मरण** करने लगीं। इतने में दरबारी ने आकर कहा—**दादा जी** बुला रहे हैं आप दोनों बाबुओं को।

दरबारी के साथ हम दोनों **यज्ञ-मण्डप** के दरवाजे पर गए। भीतर से **दादा जी** ने कहा— जो अतिथि आ रहे हैं, उनका स्वागत-सत्कार मैं आज नहीं कर सकूँगा। उनकी सँभाल तुम्हें बाहर रहकर करनी होगी। जाओ।

यह आज्ञा पाकर हम दोनों बाहर आकर आनेवाले सज्जनों के स्वागत-सत्कार में लग गए। इस काम से हमें सन्ध्या हो जाने के बाद ही छुट्टी मिली। निराहार होने से हम दोनों ही पस्त-सा हो गए थे, तो भी न जाने क्यों उस दिन हम दोनों का उत्साह भङ्ग नहीं हुआ। दस बजे तक दर्शनार्थ लोग आते रहे और प्रसाद बँटता रहा। उसके बाद लोगों का आना बन्द हो गया।

दादा जी का सन्देश आया कि— 'अब जो लोग आएँ, उनका परिचय लेकर यहाँ भीतर पहुँचाते जाओ।' **दादा जी** ने एक पुर्जा भेजा था, जिसमें कोई ४० नाम लिखे थे। ग्यारह बजे के लगभग कुछ लोग आए। नाम-धाम पूछकर उन्हें **यज्ञ-मण्डप** में पहुँचा आए। इस प्रकार जब सब लोग पहुँच गए, तब **दादा** ने हम दोनों को भी भीतर बुला लिया।

भीतर जाने पर वहाँ का दृश्य देखकर हम दोनों ही दङ्ग रह गए। भीतर का टट्टर हटा देने से **दुर्गा-मन्दिर** और **यज्ञ-मण्डप** एक हो गया था। बीच के आसन पर बैठकर **काली जी** के मन्दिर के **हल्दार बाबू** पूजा कर रहे थे और उनके दाहिने **भैरवी मां** बैठी **जप** कर रही थीं और दूसरे लोग एक क्रम से अपने आसनों पर चुपचाप बैठे **जप** कर रहे थे। वह दृश्य देखकर हम दोनों अवाक् खड़े रहे। **दादा** ने कहा—तुम दोनों भी एक-एक आसन लेकर वहीं बैठ जाओ।

हम लोग चुपचाप बैठकर उस हृदय-ग्राही दृश्य को देखने लगे। ठीक ढाई बजे **पूजा** समाप्त हुई। तब **हल्दार बाबू** ने हमारी ओर देखकर कहा—**शर्मा,** यह तुम्हारा और **बीरू** का सौभाग्य है कि आज इस पवित्र अवसर पर तुम्हारी **दीक्षा** हो रही है और तुम्हें **मन्त्र** देने के लिए **कामाख्या** से **भैरवी मां** पधारी हैं।

यह कहकर वे उठे और हम दोनों का सविधि **संस्कार** करने लगे। उसके बाद **भैरवी मां** ने हम दोनों को **मन्त्र** प्रदान किया। तदनन्तर सब लोगों में प्रसाद बाँटा गया। चार बजते-बजते सब कृत्य समाप्त हुआ और सब लोग अपने-अपने स्थान को चले गए। दूसरे दिन जब हम सोकर उठे, तब अपने भाग्य को सराहने लगे। **दादा जी** ने कहा—**शर्मा,** जीवन में ऐसा अवसर बड़े भाग्य से मिलता है।

मैंने उनके चरणों को स्पर्श करके कहा—यह सौभाग्य इन्हीं चरणों की रज का फल है। मैं नहीं जानता था कि आप मेरा इतना स्नेह करते हैं।

कुछ दिन **दादा** के यहाँ **भैरवी मां** की सेवा में रहकर मैं शहर चला आया। अब मेरे मन में पहले की तरह दुर्भावनाएँ नहीं उठती हैं। उठें भी कैसे? अब तो मां ने मुझे अपनी शरण में ले लिया है।

* * *

भैरवी मां— अन्नदा दादा के यहाँ अधिक समय तक रहीं। अतएव उनके निरीक्षण में मैंने और **बीरू** ने दोनों ने अपने-अपने **मन्त्र का सविधि पुरश्चरण** कर लिया। इस दीर्घ-काल में हम सभी लोग **मां जी** के घनिष्ठ सम्पर्क में आ गए थे। **मां जी** बहुत ही शान्त, सरल और स्नेह-शील थीं। गप-शप तथा प्रपञ्च की बातों से सावधानी से अपने को दूर रखती थीं। उनके रूप में हम लोगों को सचमुच वैसा ही **गुरु** मिला, जैसा हम चाहते

थे। मां का जीवन तप का जीवन था। अहर्निश पूजा-पाठ में लगी रहती थीं। यही एक उनका व्यसन था और कोई नहीं। बातचीत करते समय भी उनका ध्यान जगदम्बा के चरणों पर ही लगा रहता था। यदि **अन्नदा दादा** का वर्षों का आग्रह न होता और उनके पतिदेव ने आदेश न किया होता, तो वे कदापि कलकत्ते न आतीं और न हमें **दीक्षा** ही देतीं। **दादा** ने कहा था कि उनके पति **स्वामी भैरवानन्द** ने मां जी से कहा कि 'यदि तुम नहीं आओगी, तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर जाना पड़ेगा और **दीक्षा** देनी पड़ेगी।' **स्वामी भैरवानन्द ने कामाख्या-पीठ** छोड़कर बाहर न जाने की प्रतिज्ञा की थी, साथ ही इस बात की भी कि वे किसी को **दीक्षा** भी नहीं देंगे। अतएव **भैरवी मां** को लाचार होकर कलकत्ते आना पड़ा था। **स्वामी भैरवानन्द अन्नदा दादा** को इतना अधिक इस कारण मानते थे कि दोनों **गुरु-भाई** थे। अस्तु।

जब यह एक दिन निश्चय हो गया कि अमुक दिन **भैरवी मां— कामाख्या** को जायँगी, तब हम सभी लोग बहुत ही दुखी हुए। **भैरवी मां** से हम लोगों के मन का भाव छिपा नहीं रहा। बातचीत करते समय उन्होंने कहा—तुम लोगों को इस प्रकार उदास नहीं होना चाहिए। क्या **आत्मिक सम्बन्ध** को सांसारिक सम्बन्ध के आगे अब भी नगण्य बनाए रहोगे? यह मैं न होने दूँगी।

इसके बाद उन्होंने **गुरु-स्तोत्र** का ऐसे ढँग से स्तवन किया कि हमारी आँखें खुल गईं और हमारी उदासी का चिह्न तक न रह गया। **मां जी** ने मेरी ओर मुँह करके पूछा—**शर्मा,** मैं तो अब जा रही हूँ। जो कुछ जानना-पूछना हो, जान-पूछ लो।

मैंने विनय के साथ कहा—आपने जो कुछ बताया है, वही मेरे कल्याण के लिए पर्याप्त है। मुझे कुछ जानना-पूछना नहीं है। जब आपने मेरा सारा दायित्व ग्रहण कर लिया है, तब मैं अब निश्चिन्त हूँ।

'शङ्का-समाधान से भी निश्चिन्त हो गए हो?'

'हाँ, मां! वह सब भी अब नहीं उठते हैं। आपने दया-पूर्वक जो राह लगा दी है, उसमें कोई बाधा नहीं पड़ रही है। मैं उससे सन्तुष्ट हूँ मां!'

मां ने **बीरू** की ओर देख कहा—और तुम **बीरू**?

बीरू में कालेज के लड़कों की सी चञ्चलता थी ही। उसने चमककर कहा—मां, शङ्काएँ और कु-तर्क तो भाई साहब ही अधिकतर किया करते हैं। मुझे इस प्रकार के वाद-विवाद का कभी शौक ही नहीं रहा, पर उस दिन वाली बात मैं भले प्रकार नहीं समझ सका। उसे तो एक बार समझाकर बता ही दें।

मां जी ने हँसकर पूछा—कौन सी बात?

'वही जो भाई साहब ने पूछी थी—शक्ति-पूजा-वाली बात।'

मां जी ने सहज भाव से कहा—**बीरू,** उसमें तो कोई पेंच की बात नहीं है। वह तो बहुत स्पष्ट है। मैंने कदाचित् तुम लोगों से कहा होगा कि **तन्त्र-मार्ग** में अनेक **'आचार'** हैं। उनमें भारतीयों का **'कुलाचार'** वेद-सम्मत आचार है, परन्तु इस युग की धर्म-ग्लानि के फल-स्वरूप दूसरे आचारों का इसमें मिश्रण हो गया है और उनका अलग-अलग करके निर्देश करना एक असाध्य कार्य है। इसी दुरवस्था का यह परिणाम है कि **शाक्त-सम्प्रदाय** छोटे-छोटे समूहों में बँटकर छिन्न-भिन्न हो गया है। हमारे समूह के आचार्य **'वेद'** का आश्रय लिए हुए **'तन्त्र-मार्ग'** का अनुसरण करते हैं। उनका कहना है कि इस **'क्रान्त'** के लिए यही **'तन्त्रानुशासन'** श्रेय है।

बीरू ने कुछ चकित-सा होकर कहा— यह **'मिश्रण'** और यह **'क्रान्त'** मेरी समझ में नहीं आ रहा है।

मां जी ने कहा—एशिया महा-द्वीप का दक्षिण-पूर्व का विशाल भाग **'तीन क्रान्तों'** में विभक्त है और प्रत्येक **'क्रान्त'** के लिए अलग-अलग **'तन्त्र'** हैं। उस दिन जब मैं तुम्हारे घर की पोथियाँ देख रही थी, तब उनमें **'चीनाचार-तन्त्र'** नाम की एक पोथी निकली थी। उसमें **'शक्ति-पूजा'** आदि का जो विधान किया गया है, वह चीन-देशवासियों के लिए है, हम लोगों के लिए नहीं —पर आज यहाँ के **तान्त्रिक संग्रह-ग्रन्थों** में **'चीनाचार'** की बातें भी शामिल कर ली गई हैं!

मैंने पूछा—**मां जी,** ऐसा क्यों हुआ? और वह क्यों ठीक नहीं है?

मां जी ने हँसकर कहा—इस सम्बन्ध में एक उदाहरण देना ठीक होगा। तुमने **परमहंस रामकृष्ण** का जीवन-चरित पढ़ा होगा। वे बड़े ऊँचे दर्जे के साधक थे। उनके चरित में लिखा है कि **शाक्त-साधना** में पूर्णता प्राप्त कर चुकने पर उन्होंने **अद्वैत, इस्लाम-धर्म** आदि की क्रम-क्रम से साधनाएँ करके उन-उन धर्मों की भी सिद्धि प्राप्त की। यदि उनका कोई शिष्य उन साधना-विधियों को लिपि-बद्ध करके उनके शिष्य-मण्डल में उस पुस्तक का प्रचार करता, तो आज **परमहंस** के अनुयायियों में हम उस साधन-प्रणाली का प्रचार अवश्य ही पाते, परन्तु उनके शिष्यों ने उनकी **'अद्वैत-साधना'** को ही ग्रहण किया, शेष को छोड़ दिया। उधर हमारे धर्म-ग्लानि-काल के आचार्य, जो भी साधना के नाम से मिला, अपने संग्रह-ग्रन्थों में भरते गए! यही कारण है कि इस देश के **'बीराचार'** में **'चीनाचार'** घुल-मिल गया और जिस **'शक्ति-पूजा'** की बात उठाकर लोग हमारे **'बीराचार'** की निन्दा करते हैं, वह **'चीनाचार'** की वस्तु है। बड़े दुःख की बात है कि इस देश के अनेक **शाक्त-साधक** इस बात की ओर ध्यान नहीं देते और अपने भ्रम-पूर्ण दुराग्रह से इस पवित्र साधना को लोक-निन्दा का पात्र बनाए हुए हैं, परन्तु यह एक आशा की बात है कि अनेक आचार्य यथा-शक्ति इस बात का प्रयत्न बराबर करते रहे हैं कि इस देश का **'बीराचार'** विदेशी प्रभावों से सर्वथा मुक्त रहे, भले ही उनका **शाक्त-सम्प्रदाय** छिन्न-भिन्न क्यों न हो जाए।

बीरू ने पूछा—परन्तु **मां जी, शाक्त-धर्म** का तो यह उद्देश्य है कि सबका सङ्गठन हो, क्योंकि मां के उपासक सब भाई-भाई हैं।

'तुम ठीक कहते हो, परन्तु **कुलाचार** की रक्षा करनी ही पड़ेगी। **शास्त्रादेश** का पालन करना ही होगा।'

मैंने कहा—**मां जी,** यह **'चीनाचार'** यहाँ कैसे आ गया? और क्या वह निन्द्य है?

'परमहंस रामकृष्ण का उदाहरण दे चुकी हूँ। उनके जैसे और भी साधक यहाँ हो चुके हैं। अपना अनुभव बढ़ाने के लिए उन्होंने दूसरे **'आचारों'** की साधनाएँ की होंगी। **वशिष्ठ** ने तिब्बत जाकर **'चीनाचार'** के अनुसार **तारा** की उपासना की थी। इसी तरह अन्य साधनाओं को दूसरे लोगों ने किया होगा। उनकी सिद्धियों का महत्त्व देखकर लोगों ने उन साधनाओं के पूजा-क्रम को अपने पूजा-क्रम में शामिल कर लिया होगा। इस प्रकार यह **मिश्रण** हुआ। अब रहा यह कि क्या वे निन्द्य हैं। मैं इस सम्बन्ध में यही कहूँगी कि अधिकारी के लिए कुछ भी निन्द्य नहीं है और साधारण साधकों के लिए तो अपना **कुल-धर्म** ही श्रेय है।'

इतने में **पुजारी जी** ने आकर कहा—**मां जी, दादा जी** पूजा-गृह में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

यह सुनकर हम सब लोग उठ खड़े हुए। **मां जी** को **पूजा-गृह** तक पहुँचाकर हम दोनों बाहर चले आए।

(क्रमशः)

* * *

'ग्रहण' से जुड़ा 'अध्यात्म'-विज्ञान

❖ श्री ऋतशील शर्मा, प्रयाग-राज (उ०प्र०)

'ग्रहण'-सम्बन्धी **'जप-दान'** एक गहरे **'अध्यात्म'-विज्ञान** से जुड़ा है। **अध्यात्म-विज्ञान** की जानकारी न होने से तथा पश्चिमी विज्ञान की चकाचौंध से प्रायः लोग **'ग्रहण'**-सम्बन्धी **'जप-दान'** को अन्ध-विश्वास समझते हैं, जो कि बुद्धिमानी-पूर्ण समझ नहीं है।

'ग्रहण'—एक प्राकृतिक घटना है। **'सूर्य'** और **'पृथ्वी'** के बीच **'चन्द्र'** के आ जाने के कारण —**'सूर्य-ग्रहण'** लगता है तथा **'सूर्य'** एवं **'चन्द्र'** के बीच **'पृथ्वी'** के आ जाने के कारण **'चन्द्र-ग्रहण'**। सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी की 'सूर्य'-ग्रहणवाली स्थिति **'अमावास्या'** के दिन होती है और 'चन्द्र'-ग्रहणवाली स्थिति **'पूर्णिमा'** के दिन। ध्यान देने की बात यह है कि प्रत्येक **'अमावास्या'** को न तो **'सूर्य-ग्रहण'** होता है और न ही प्रत्येक **'पूर्णिमा'** को **'चन्द्र-ग्रहण'**। संयोग से वर्ष में कुछ ही बार ऐसी स्थिति आती है, जब **'सूर्य-चन्द्रमा-पृथ्वी'** लगभग एक सीध में होते हैं। ऐसा होने पर, **'सूर्य'-ग्रहण** या **'चन्द्र'-ग्रहण** होते हैं। **'पूर्ण सूर्य-ग्रहण'**-जैसी घटना, अर्थात् जब चन्द्रमा आकार में छोटा होता हुआ भी पृथ्वी के किसी स्थान पर **'सूर्य'** के प्रकाश को पूरी तरह से ढँक लेता है, कई वर्षों के अन्तराल में घटित होती है।

'ग्रहण'-सम्बन्धी उक्त प्राकृतिक घटना से हम भारतीय बहुत पहले से परिचित रहे हैं। हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ **'ऋग्वेद'** में इसका स्पष्ट उल्लेख है। **ज्योतिष विद्या, खगोल शास्त्र** का प्रारम्भ हमारे देश भारत से ही हुआ है। हमारे खगोल-शास्त्री **'ग्रहण'**-जैसी प्राकृतिक घटना से परिचित न रहे हों, यह सम्भव ही नहीं है। हजारों वर्ष पूर्व भारत के खगोल-विदों ने सूर्य, पृथ्वी, ग्रह आदि के सम्बन्ध में जो गणनाएँ की थीं; जब वे आज भी अक्षरशः सत्य सिद्ध हैं; तब उन्हें **'ग्रहण'**-जैसी सामान्य प्राकृतिक घटना के बारे में सत्य ज्ञात न होगा, यह माना नहीं जा सकता। हाँ, यह सम्भव है कि साधारण जनता को इसके बारे में भौगोलिक तथ्य ज्ञात न हों क्योंकि उस समय अध्ययन-अध्यापन लोगों की दिन-चर्या को देखते हुए ही होता था। सबको सभी बातें बताने की आज की प्रथा उस समय न थी।

रही बात **'ग्रहण'** के बारे में चिन्तकों-विचारकों की, तो उन्हें इस सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी थी। यही नहीं, वे अपनी जानकारी के आधार पर बहुत आगे बढ़ चुके थे। तभी उन्होंने **'ग्रहण'** से **'भौतिक'** एवं **'आध्यात्मिक'—** दोनों प्रकार के लाभ अर्जित किए। उनके उपदेशानुसार **'ग्रहण'** को एक यज्ञ का स्वरूप दिया गया। पात्रता अथवा अधिकार-भेद के अनुसार अधिक-से-अधिक लोगों को लाभान्वित करने के उद्देश्य से उन्होंने **'ग्रहण'** से सम्बन्धित **कथाओं, उपासना-विधियों, नियमों** आदि का निर्देश किया।

'ग्रहण'-सम्बन्धी मूल अध्यात्म-विज्ञान के जानकारों का अभाव तब हुआ, जब देश की संस्कृति पराधीन हो गई। ज्ञान-विज्ञान की अनेक बातें इधर-उधर बिखर गईं। ज्ञान-प्राप्ति का

कोई प्रधान केन्द्र न रहा। अधिकांश साहित्य लूट-पाट में नष्ट हो गया। कठिन परिस्थितियों-वश जो थोड़े से चिन्तक-विचारक थे, वे गुप्त हो गए। ऐसी विकट स्थिति में समाज में आधी-अधूरी जानकारियाँ ही बची रहीं। मूल **'अध्यात्म-विज्ञान'** लुप्त हो गया।

देश स्वतन्त्र हुआ, तो कुछ आशी हुई थी कि पुनः **'मूल ज्ञान-विज्ञान'** की चर्चा होगी। किन्तु, ऐसा न हुआ। देश का नेतृत्व कर रहे लोगों ने **'भौतिक विकास'** को ही प्राथमिकता दी। फलतः आज ५३ वर्षों में **'भौतिक विकास'** के चिह्न तो दिखाई दे रहे हैं किन्तु उनके पीछे एक भयावह सभी प्रकार के विकासों को निगलनेवाली **'आध्यात्मिक विचार-शून्यता'** भी दिखाई दे रही है! **'आनन्द'** या **'शान्ति'** के लक्षण कहीं भी दिख नहीं रहे हैं! चारों ओर अशान्ति, कदाचार ही फैलता हुआ दिख रहा है! समाज या देश की इस दुर्दशा का एक-मात्र कारण यह है कि हमने केवल **'भौतिक उन्नति'** —प्रत्यक्ष सुख-सुविधा को ही चाहा है। **'आन्तरिक विकास'** हेतु आज हमारी न तो कोई सार्थक पहल है, न ही प्रयास!

'आन्तरिक विकास' के लिए **'ग्रहण'**-जैसी विलक्षण प्राकृतिक घटनाएँ बहुत महत्त्व-पूर्ण हैं। यहाँ हमारा चिन्तन आज संकुचित दृष्टि के कारण पहुँच ही नहीं पा रहा है। हम लोग तो सभी लोगों को **'सूर्य'** या **'चन्द्रमा'**—सम्बन्धी भौतिक ज्ञान-सम्बन्धी सूचनाएँ देना ही अपना मुख्य कार्य समझ रहे हैं। लोगों को **'ग्रहण'** की छाया और उससे सम्बन्धित प्रश्नों आदि के बारे में ढेर सारी सूचनाएँ उपलब्ध कराई जा रही हैं। लोग भी सुन रहे हैं क्योंकि महत्त्व-पूर्ण लोग उन्हें आकर्षक रूप में सुना रहे हैं। **'पूर्ण सूर्य-ग्रहण'** पर तो खूब जोर-शोर से विज्ञान की बातें हुई, **'ग्रहण'**-सम्बन्धी पुरानी बातों की खिल्ली उड़ाई गई! किन्तु, उपलब्धि क्या हुई? लोग जिस **'डायमण्ड रिङ्ग'** को देखने के लिए आतुर थे, वह कहीं बादलों के कारण दिखी नहीं और कहीं दिखी, तो बस लोग पागलों की तरह 'हू-हू' करने लगे! करोड़ों रुपए इस सम्बन्ध में खर्च हुए और उपलब्धि क्या रही— **शून्य! एक अजीबोगरीब तमाशा—वह भी विज्ञान के नाम पर!!**

अब जरा **'ग्रहण'**-सम्बन्धी **'अध्यात्म-विज्ञान'** के रहस्योद्घाटन करनेवाले **गुप्तावतार बाबा श्री** द्वारा **'चन्द्र-ग्रहण', सन् १९२०** ई० पर लिखी निम्न-लिखित गुजराती कविता को देखिए। आपको पता चलेगा कि **'ग्रहण'** से कैसी व कितनी अनमोल उपलब्धि हो सकती है—

'चन्द्र-ग्रहण'-पूर्णिमा

(परम पूज्य गुप्तावतार बाबा-श्री द्वारा विरचित रहस्योद्घाटिनी रचना)

चन्द्र-ग्रहण आज, प्यार मां पड़ी जुओ। पूर्णमां मळे न ताज, त्याँ चढ़ी जुओ।।१

मौज ताज साज लाज काज गाजवी। सर्वदा रहे जहाँ, अपूर्णता नवी।।२

जुओ जणाय गन्ध, पुष्पनी तहाँ सुधी। इत्र तेज पुष्पनुं शिरे भर्या सुधी।।३

भर्या पछे न गन्ध, चित्त मस्त थाय छे। भर्या पछे न छाल, के न अस्त थाय छे।।४

रहे जहाँ सुधी अपूर्ण-ताज जीव मां। दरेक दादरी चढ़े, नवा जुअे जगा॥५
लखी सु-सूक्ष्मता नवी, नवी तणाय छे। अहा जुओ नवीन मां वधू जणाय छे॥६
दरेक सूक्ष्म विन्दु मां चढ़े नवूं लखे। भक्त भुक्ति-मुक्तिनी नवी छटा लखे॥७
जहाँ सुधी अपूर्णता, आनन्द दुःख-सुख। भये सुपूर्ण को दुखी, सुखी न स्वयं सुख॥८
अनुभवी थकी अनुभवी पृथक जहाँ। तहाँ सुधी अपूर्ण भोगवे पृथक जहाँ॥९
अनुभवो अनुभवी सुदृश्य जे पड़े। भये अनन्त एक भोग भोगता नहीं॥१०
महा - समुद्र लहेर उठी वेगली चढे। पड़े पछे समुद्र - सार वेगली नहीं॥११
चन्द्र आज आ जुओ खग्रास ग्रहण मां। कालिमा-मयी थयो गई प्रभा जमा॥१२
प्रकृति - शक्ति छायया तमो-मयी जगत। जीव थाय तेम चन्द्र-चन्द्रिका विगत॥१३
अन्धकार मां महा - उपासना करे। जीव सिद्ध चन्द्रमां, जई ढरे परे॥१४
यज्ञ - होम - कर्म शुभा शूभनी हवी। होमतां बळे भ्रमो कहे सुणो कवी॥१५
पछे दशांश तर्पणे मनोज बुद्धि मां। ढरे जुओ ठरी ठेकाणे ठौर शुद्धि मां॥१६
जुओ गयेल चन्द्रिका तमे नवा जई। नवा प्रपञ्च छोड़ि साधको समी थई॥१७
अहा बध्यो, फरी खिल्यो, थयो पछे नवो। जुओ सुरम्य चन्द्रिका, प्रकाश छे नवो॥१८
अहाऽऽत्म-अन्तरे महा-विकास तो प्रकाश। जुओ सदाऽन्तरे अदा थकी नवो विकास॥१९
जीव विश्वना पञ्चा तमो स्व - ग्रहण मां। जीव-चन्द्र राहुथी ग्रसायला समा॥२०
करी उपासना उघाड़ राहु - तत्त्व ने। पामशो सु-चन्द्र 'मोति' आत्म-तत्त्व ने॥२१

मुम्बई, १३-१२-१९२७

स्पष्ट है कि **'ग्रहण'** जैसी प्राकृतिक घटना द्वारा हमारे यहाँ लोगों को **आत्म-तत्त्व, आत्मा और मन की उपलब्धि** हुई है। इस उपलब्धि के विषय में ग्रन्थों की बातें पूर्णतया सत्य हैं। दुःख की बात यह है कि हम लोग अपने ग्रन्थों का अध्ययन **आत्म-उपलब्धि** के उद्देश्य से नहीं कर रहे हैं। देखिए, **'पुरश्चरण-रसोल्लास'** (मूल्य १५.०० रुपए) में **भगवान् शिव—पार्वती जी** से जो कहते हैं, उसे ही तो **गुप्तावतार बाबाश्री** ने स्वयं साक्षात्कार कर व्यक्त किया है। अपनी उक्त गुजराती कविता में हम लोगों के लिए कहा है—

चन्द्र-सूर्य-ग्रहो देवि! यदा भवति बाह्यतः। तदैव सहसा देवि! सहस्रारे मनो दधे॥
सूर्य - पर्व वरारोहे! मूलाधारे मनो दधे। बाह्य-पर्व महेशानि! दृष्ट्वा तूर्ण मनो दधे॥
मनो विवेच्य चार्वङ्गि! चन्द्रे च ब्रह्म-पङ्कजे। अन्तः-पर्वणि चार्वङ्गि! निवेश्य मन-सारथिः।
जपेत् परम-यत्नेन न तु बाह्य-निरीक्षणम्॥

अर्थात् हे देवि! बाहर जब **चन्द्र** और **सूर्य-ग्रहण** होते है, तभी सहसा **सहस्रार में मन को एकाग्र** करे। हे महेशानि! बाहर **सूर्य-ग्रहण-पर्व** का दर्शन होते ही तुरन्त **मन को मूलाधार में**

एकाग्र करना चाहिए। हे चार्वङ्गि! **ब्रह्म-पङ्कज (सहस्रार) में स्थित चन्द्र** में मन को दृढ़ता से स्थिर कर अन्तः पर्व-रूपी रथ पर **'मन'** को सारथी-रूप में बैठाकर यत्न-पूर्वक **जप** करे। **बाह्य-पर्व** का सीधे दर्शन न करे।

इस प्रकार **'ग्रहण'** के समय **'चिन्तन-जप'** करने से क्या लाभ होता है? उसके सम्बन्ध में भी भगवान् शिव कहते हैं—

चन्द्र-सूर्य-ग्रहे देवि! अन्तरात्मनि चानघे! यः पश्येत् चञ्चलापाङ्गि! सहस्रारे निशा-पतिम्।।

मूलाधारे तु यः पश्येत् साधकः सूर्य-मण्डलम्। राहु-ग्रह-समायुक्तमन्तरात्मनि पश्यति।।

अर्थात् हे अनघे देवि! **'चन्द्र-सूर्य'** के **'ग्रहण-काल'** में जो साधक **'अन्तरात्मा'** से **'मन'** को जोड़कर **'सहस्रार'** में **'चन्द्र'** और **'मूलाधार'** में **'सूर्य-मण्डल'** को **'राहु-ग्रस्त-रूप'** में भावना से देखते हैं, वे वैसा ही **'अन्तरात्मा'** में भी देख पाते हैं।

'सूर्य-ग्रहण' में आज-कल के वैज्ञानिकों को, छाया से आबद्ध **'सूर्य'** में से निकलती किरणें बहुत सुन्दर दिखाई देती हैं। वे उसमें **'डायमण्ड रिङ्ग'** की छवि देखते हैं! हमारे यहाँ इसके ठीक विपरीत, **'सूर्य'-ग्रहण** में **'मन'-रूपी चन्द्रमा की छाया से मुक्त होती हुई 'आत्मा'—सूर्य का विस्मय-कारक अनुभव** होता है अथवा **'चन्द्र'-ग्रहण** में **'मन'-रूपी चन्द्रमा को ढँकते हुए, पीला पड़ते हुए, काला होते हुए** और फिर एक-मात्र सहायक **आत्मा—सूर्य से पुनः प्रकाशित** होने का हृदय-ग्राही अनुभव होता है। **'चन्द्र-ग्रहण'** में चूँकि **'मन'** को जीतने का अनुभव होता है, इसलिए उसे **'जप-दान' हेतु कोटि-गुणा** अधिक श्रेष्ठ माना गया है।

स्नानं दानं तथा श्राद्धमिन्दोः कोटि-गुणं भवेत्। रवेर्दश-गुणं भद्रे! ग्रहणे तु भविष्यति।।

एकधा प्रजपेन्मन्त्रमिन्दोः कोटि-गुणं भवेत्। सूर्ये दश-गुणं देवि! नान्यथा मम भाषितम्।।

अर्थात् स्नान-दान व श्राद्धादि **चन्द्र-ग्रहण में कोटि-गुणा** और **सूर्य-ग्रहण में दश-गुणा** अधिक फल-दायक होते हैं। हे देवि! **'चन्द्र-ग्रहण'** में एक बार मन्त्र जपने का फल **कोटि-गुणा** और **सूर्य-ग्रहण** में **दश-गुणा** होता है, यह मेरा कथन कभी मिथ्या नहीं होता।

उपर्युक्त विवरणों से यह भली-भाँति स्पष्ट होता है कि हमारे मनीषियों का **'ग्रहण'-सम्बन्धी ज्ञान** अति विस्तृत तो है ही, साथ ही अत्यन्त कल्याण-कारी है। आधुनिक विज्ञान की सीमा को समझते हुए हमें अपने इस प्राचीन **'अध्यात्म-विज्ञान'** को शीघ्र-से-शीघ्र अपनाना चाहिए। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि एक समय था, जब हमारी **'संस्कृति'** अपनी ऊँचाई पर थी, तब हमारे देश से उक्त **'अध्यात्म-विज्ञान'** का प्रचार-प्रसार अन्यान्य प्राचीन देशों में भी हुआ था। **मिस्र, बेबीलोन, ग्रीक, रोम, चीन, जापान** आदि प्राचीन देशों में **'ग्रहण'**-सम्बन्धी कई मान्यताएँ हमारे देश से प्रभावित होकर प्रचलित हुई थीं, जो आज भी किसी-न-किसी रूप में वहाँ प्रचलित हैं। जब हमारे देश में अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था नष्ट हो गई, तब अन्यत्र किस प्रकार की भ्रान्तियाँ हुई होंगी, यह समझा जा सकता है।

अस्तु! आवश्यकता है कि हम अपनी **प्राचीन विद्या** को पुनः खोजें-पहचानें। इससे हमारा देश तो लाभान्वित होगा ही, पूरा विश्व चमत्कृत होगा।

* * *

आषाढ़ पूर्णिमा और पौष पूर्णिमा में 'चन्द्र'-ग्रहण

नए **'विजय'** संवत् २०५७ विक्रमी में **तीन 'सूर्य'-ग्रहण** और **दो 'चन्द्र'-ग्रहण** लग रहे हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

(१) **आषाढ़ अमावास्या, शनिवार, १.६.२०००** को पहला **'सूर्य'-ग्रहण** है, जो भारत में दिखाई न देगा। (२) **आषाढ़ पूर्णिमा, रविवार, १६.७.२०००** को दूसरा **'चन्द्र'-ग्रहण** है, जो भारत में दिखाई देगा। (३) **श्रावण अमावास्या, सोमवार, ३१.७.२०००** को तीसरा **'सूर्य'-ग्रहण** है, यह भी भारत में दिखाई न देगा। (४) **पौष अमावास्या, सोमवार, २५.१२.२०००** को चौथा **'सूर्य'-ग्रहण** है, यह भी भारत में दिखायी न देगा। (५) **पौष पूर्णिमा, मङ्गलवार, ९.१.२००१** को पाँचवाँ **'चन्द्र'-ग्रहण** है, जो भारत में सर्वत्र दिखाई देगा। इस प्रकार **'पाँच-ग्रहणों'** में से केवल **दो 'चन्द्र'-ग्रहण भारत में** दिखाई देंगे। **'जप-तप-दान'** के सन्दर्भ में **'चन्द्र'-ग्रहण का विशेष महत्त्व** है। **आषाढ़ पूर्णिमा** (**गुरु-पूर्णिमा**) और **पौष पूर्णिमा** (**गुप्त नवरात्र**) के महत्त्व को ध्यान में रक्खें, तो इनका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

आषाढ़ पूर्णिमा का 'चन्द्र'-ग्रहण

आषाढ़ पूर्णिमा, १६.७.२००० को **'चन्द्र-ग्रहण का प्रारम्भ'** भारत के पूर्वी तथा सुदूर पूर्वोत्तर भाग, जैसे अगरतला, ऐजवाल, कलकत्ता, दार्जिलिङ्ग, गङ्गटोक, गुवाहाटी, पोर्ट ब्लेयर एवं शिलाङ्ग आदि स्थानों में दिखाई देगा तथा **'ग्रहण का मोक्ष'** पूरे भारत में दिखाई देगा। **'ग्रहण-अवधि' ३ घण्टा, ३६ मिनट** है।

काशी (उ०प्र०) में 'ग्रहण का प्रारम्भ' सायं ५.२३ पर होगा और **'ग्रहण का मोक्ष' रात्रि ९.१९** को होगा।

शास्त्रों के अनुसार जहाँ **'ग्रहण'** हो रहा हो, वहाँ पर जब तक **'ग्रहण'** दृष्टि-गोचर होता है, वह **'ग्रहण का पुण्य काल'** होता है। जब तक 'पुण्य-काल' रहता है, तब तक **'जप'** अत्यन्त पुण्य-दायी माना गया है। मन्त्र के वर्णों की संख्या के अनुसार लाखों में किए गए **'जप'** का पुण्य, **'ग्रहण-काल' में केवल 'स्पर्श' से 'मोक्ष'-पर्यन्त 'जप'** करने से ही प्राप्त हो जाता है।

'ग्रहण'-काल में 'जप' हेतु विशेष बातें इस प्रकार हैं—

☐ पहले स्नानादि करके **'सङ्कल्प'** करें— "**ॐ तत्सत्। अद्यैतस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीय-प्रहरार्द्धे, श्वेत-वराह-कल्पे, जम्बू-द्वीपे, भरत-खण्डे, आर्यावर्त-देशे, अमुक पुण्य-क्षेत्रे, कलि-युगे, कलि-प्रथम-चरणे, 'विजय'-नाम संवत्सरे, 'आषाढ़'-मासे पूर्णिमा-तिथौ, रवि-वासरे, चन्द्र-ग्रहण-काले, 'अमुक'-गोत्रोत्पन्नो, 'अमुक'-नामो,**

श्रीमद्-इष्ट-देवता-प्रीत्यर्थं, शास्त्रोक्त-पुण्य-फल-प्राप्ति-कामनया वा अमुक-मन्त्र-सिद्धि-कामनया अमुक-मन्त्रस्य स्पर्शारम्भात् मोक्ष-पर्यन्तं जपमहं करिष्ये।''

- □ **'ग्रहण'** में यदि राशि से **'अनुकूल ग्रहण'** हो, तो **'ग्रहण'** देखते हुए **'बिम्ब में इष्ट-देवता का ध्यान'** करते हुए **'जप'** करना चाहिए।
- □ राशियों के लिए **आषाढ़ पूर्णिमा, २०५७ वि० के 'चन्द्र'-ग्रहण का फल** इस प्रकार है— **१ मेष : सुख। २ वृष : मान। ३ मिथुन : मृत्यु-कष्ट। ४ कर्क : स्त्री-पीड़ा। ५ सिंह : सौख्य। ६ कन्या : चिन्ता। ७ तुला : व्यथा। ८ वृश्चिक : श्री। ९ धनु : क्षति। १० मकर : घात। ११ कुम्भ : हानि। १२ मीन : लाभ।**
- □ **'ग्रहण'** में **'जप'**—मानसिक करे। **'पाठ'** या **'वाचिक जप'** न करे।
- □ **'ग्रहण' के बाद 'जप' का दशांश 'हवन'**, हवन का दशांश **'तर्पण'**, तर्पण का दशांश **'मार्जन'** और मार्जन का दशांश ब्राह्मण (वीर)-भोजन कराए। **'हवन'** आदि के अभाव में दशांश **'जप'** का **'चौगुना और जप'** करे।
- □ ग्रहण-काल में **नित्य किए जानेवाले मन्त्र का 'जप'** अवश्य करना चाहिए, जिससे वे मलिनता को प्राप्त न हों। **'ग्रहण'** के बाद स्नान (अशक्तावस्था में मन्त्र-स्नान) कर **'यज्ञोपवीत'** बदलकर दशांश हवनादि करे।
- □ **'शाबर'-मन्त्र** भी **'ग्रहण'-काल** में अत्यन्त सरलता से सिद्ध होते हैं। अतः इच्छुक बन्धु उनका भी **'जप'** कर सकते हैं।
- □ **'ग्रहण'-समय में भोजन** नहीं करना चाहिए। नारियल, दूध, मट्ठा-दही, घृत से पके अन्न और मणि में स्थित जल **'राहु'** से दूषित नहीं होते। **'ग्रहण'**-काल में **'कुश'**-डालने से वस्तुएँ अपवित्र नहीं होतीं।
- □ **'ग्रहण'** में बालक, वृद्ध, रोगी के लिए कोई नियम नहीं है।
- □ **'ग्रहण'**-काल में यदि किसी के यहाँ कोई बच्चा पैदा हुआ हो अथवा कोई मर गया हो, तो भी **'जप'** करे। **'ग्रहण-काल'** में **'जप' हेतु अशौच नहीं** माना जाता।
- □ **'ग्रहण'** में **'जप'** करने के बाद **'दान'** करना चाहिए। **'दान-मन्त्र'** इसप्रकार है—

तमो-मय महा-भीम, सोम-सूर्य-विमर्दन! हेम-तार-प्रदानेन, मम शान्ति-प्रदो भव।।
विधुं-तुद नमस्तुभ्यं, सिंहिका-नन्दनाच्युत! दानेनानेन नागस्य, रक्ष मां वेधजाद् भयात्।।

* * *

'चन्द्र'-ग्रहण पर भगवती भुवनेश्वरी की पूजा

श्रीभैरव जी बोले—हे महेश्वरि! **'भुवनेश्वरी'** का रहस्य तथा सर्वोत्तम **'पूजा-विधि'** को कहता हूँ, एक-चित्त होकर सुनो।

हे महेश्वरि! **चन्द्र-ग्रहण** के **स्पर्श-काल** में स्नान कर साधक भूमि को गो-मय से पवित्र करके **यन्त्र** को लिखे।

हे देवि! **विन्दु-युक्त त्रिकोण, दशार, पञ्च-कोण, अष्ट-दल** और **भूपुर** से सुशोभित यन्त्र सिन्दूर, अष्ट-गन्ध और हल्दी से लिखकर आसन-शुद्धि तथा भूत-शुद्धि करे। हे देवेशि! पञ्च-प्राणों को समर्पित करके, भैरव-ऋष्यादि न्यास से सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त करके विधि-वत् **न्यास** करे। फिर विविध **'मातृका-न्यास'** और **'श्रीकण्ठ-न्यास'** कर **करोड़ों चन्द्र के समान कान्ति-मती चन्द्र-स्थिता देवी का ध्यान** करे और पहले **'पात्र-स्थापन'** का कार्य कर मन से **शिव-समेत भगवती भुवनेश्वरी का ध्यान** करे तथा **शक्ति-समेत राहु** का भी ध्यान करे।

हे देवेशि! **चन्द्र का आवाहन** करके **'स्वागतं अर** अर्थात् **'स्वागत है'** ऐसा कहे। स्थान में, सम्मुख और ध्यान में अलग-अलग **मुद्राएँ** करनी चाहिए। पहले **पाद्य, अर्घ्य** आदि देकर पीछे **पूजन** आरम्भ करे। **चतुरस्र** में **गणेश, नन्दि-रुद्र, पुष्प-दन्त** और **किरीटी** का पूजन गन्ध, अक्षत, पुष्प से दक्षिणावर्त-क्रम से करे। **अष्ट-दल में मङ्गला, पिङ्गला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका,**

उल्का, सिद्धा और **सङ्कटा** का पीले रङ्ग के फूलों से वामावर्त-क्रम से पूजन करे। **पञ्च-कोण** में **श्रीमहा-त्रिपुरा, त्रिपुर-मालिनी, त्रिपुरा-विजया** और **त्रिपुर-बासिनी** का वामावर्त से गन्ध, अर्घ्य, धूप, दीप और पुष्पों से पूजन करे।

तब **दशार में इन्द्र, धर्म-राज, वरुण, कुबेर, ईश, अग्नि, पलाश, वायु, विष्णु** और **कुमार** का पूजन श्वेत पुष्पों से दक्षावर्त-क्रम से करे।

तब हे देवि! साधक **त्रिकोण में कामेश्वरी, वज्रेश्वरी** और **भग-मालिनी** का विशेष कर पीले फूल से पूजन करे। फिर **सर्वानन्द-मय बिन्दु-चक्र में शिव के साथ देवी भुवनेश्वरी** का और **ईश्वर, महा-रुद्र, काल, अग्नि, भैरवेश्वर, बर, अंकुश, पाश** तथा **अभय** का पूजन कर वहीं **स-शक्तिक राहु** का मूल-मन्त्र से पूजन करे। तब **शक्ति-सहित चन्द्रमा** और उनकी **सोलह कलाओं** तथा **नक्षत्र-माला-सहित रात्रिं** का भी पूजन करे।

हे सुरेश्वरि! देवी को निवेदन किए हुए गन्ध, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल आदि समर्पित करे। पुनः **न्यास** करके **पाँच हजार या ढाई हजार या एक हजार मूल-मन्त्र जप कर दशांश हवन** करे।

तब **कवच, सहस्र-नाम-स्तोत्र** आदि का पाठ करे। पुनः **'यन्त्र'** के प्रति **'दक्षिणा'** में यथा-शक्ति चाँदी-सोने की मुद्रा अर्पित करे। **गुरु, देवता** तथा **देवी** को जप समर्पित करे और **'संहार-मुद्रा'** से देवता तथा देवी का **विसर्जन** करे।

हे देवि! इस प्रकार जो साधक **देवी भुवनेश्वरी का पूजन** करता है, वह **साक्षात् भैरव** हो जाता है।

हे महेश्वरि! इस संसार में नित्य नियम से करोड़ पूजन करने का जो फल होता है, वह फल इस पूजन से तत्काल साधक प्राप्त करता है और हजार पुरश्चरण का तथा दस हजार अश्वमेध-यज्ञ करने का जो फल होता है, वह केवल इस **ग्रहण-कालीन पूजन** से होता है।

विशेष : जो बन्धु **'यन्त्र'**-आदि की व्यवस्था न कर सकें, वे चाहें, तो भावना से ऐसी **'पूजा'** कर सकते हैं। यदि पहले से किसी और देवता की उपासना कर रहे हों, तो उक्त विधि के अनुसार **अपने देवता की अङ्ग-देवताओं सहित पूजा-जप** कर सकते हैं। **'पूर्णाभिषिक्त'** साधक **'संक्षिप्त चक्रार्चन'**-पूर्वक **'मन्त्र-जप'** से अकल्पनीय लाभ उठा सकते हैं।

'ग्रहण-काल' में 'जप'-योग्य मन्त्र :

'चन्द्र'-गायत्री-मन्त्र

ॐ अमृताङ्गाय विद्महे कला-रूपाय धीमहि तन्नः सोमः प्रचोदयात्।।

*

'चन्द्र'-एकादशाक्षर-मन्त्र

ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः

वर्ण-माला में :

'चन्द्र'-ग्रहण के पावन अवसर पर

सोम (चन्द्र)-षडक्षर-मन्त्र-साधना

विनियोग—ॐ अस्य सोम (चन्द्र)-षडक्षर-मन्त्रस्य भृगुः ऋषिः। पंक्तिश्छन्दः। श्रीसोमः देवता। **स्वौं** बीजं। **नमः** शक्तिः। सर्व-कामना-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीभृगु-ऋषये नमः शिरसि। पंक्तिश्छन्दसे नमः मुखे। श्रीसोम-देवतायै नमः हृदि। **'स्वौं'**-बीजाय नमः लिङ्गे। **'नमः'**-शक्तये नमः नाभौ। सर्व-कामना-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

कर-न्यास—स्वां अंगुष्ठाभ्यां नमः। स्वीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। स्वूं मध्यमाभ्यां वषट्। स्वैं अनामिकाभ्यां हुं। स्वौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। स्वः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्।

अङ्ग-न्यास— स्वां हृदयाय नमः। स्वीं शिरसे स्वाहा। स्वूं शिखायै वषट्। स्वैं कवचाय हुं। स्वौं नेत्र-त्रयाय वौषट्। स्वः अस्त्राय फट्।

ध्यान— **कर्पूर-स्फटिकावदातमनिशं पूर्णेन्दु-बिम्बाननम्।**
मुक्ता-दाम-विभूषितेन वपुषा निर्मूलयन्तं तमः॥
हस्ताभ्यां कुमुदं वरं विदधतं नीलालकोद्भासितम्।
स्वस्याङ्कस्थ-मृगोदिताश्रय-गुणं सोमं सुधाब्धिं भजे॥

मानस पूजा— लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः। हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः। यं वाय्वात्मकं धूपं घ्रापयामि नमः। रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि नमः। वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि नमः। सं सर्वात्मकं ताम्बूलं समर्पयामि नमः।

मन्त्र— स्वौं सोमाय नमः। (६ अक्षर)

'वर्ण-माला' में उक्त मन्त्र का **'जप'** निम्न प्रकार करे। यथा—

ॐ	८ ॠं स्वौं सोमाय नमः ॠं	१६ अः स्वौं सोमाय नमः अः	२४ जं स्वौं सोमाय नमः जं
१ अं स्वौं सोमाय नमः अं	९ लृं स्वौं सोमाय नमः लृं	१७ कं स्वौं सोमाय नमः कं	२५ झं स्वौं सोमाय नमः झं
२ आं स्वौं सोमाय नमः आं	१० लॄं स्वौं सोमाय नमः लॄं	१८ खं स्वौं सोमाय नमः खं	२६ ञं स्वौं सोमाय नमः ञं
३ इं स्वौं सोमाय नमः इं	११ एं स्वौं सोमाय नमः एं	१९ गं स्वौं सोमाय नमः गं	२७ टं स्वौं सोमाय नमः टं
४ ईं स्वौं सोमाय नमः ईं	१२ ऐं स्वौं सोमाय नमः ऐं	२० घं स्वौं सोमाय नमः घं	२८ ठं स्वौं सोमाय नमः ठं
५ उं स्वौं सोमाय नमः उं	१३ ओं स्वौं सोमाय नमः ओं	२१ ङं स्वौं सोमाय नमः ङं	२९ डं स्वौं सोमाय नमः डं
६ ऊं स्वौं सोमाय नमः ऊं	१४ औं स्वौं सोमाय नमः औं	२२ चं स्वौं सोमाय नमः चं	३० ढं स्वौं सोमाय नमः ढं
७ ऋं स्वौं सोमाय नमः ऋं	१५ अं स्वौं सोमाय नमः अं	२३ छं स्वौं सोमाय नमः छं	३१ णं स्वौं सोमाय नमः णं

३२ तं स्वौं सोमाय नमः तं
३३ थं स्वौं सोमाय नमः थं
३४ दं स्वौं सोमाय नमः दं
३५ धं स्वौं सोमाय नमः धं
३६ नं स्वौं सोमाय नमः नं
३७ पं स्वौं सोमाय नमः पं
३८ फं स्वौं सोमाय नमः फं
३६ बं स्वौं सोमाय नमः बं
४० भं स्वौं सोमाय नमः भं
४१ मं स्वौं सोमाय नमः मं
४२ यं स्वौं सोमाय नमः यं
४३ रं स्वौं सोमाय नमः रं
४४ लं स्वौं सोमाय नमः लं
४५ वं स्वौं सोमाय नमः वं
४६ शं स्वौं सोमाय नमः शं
४७ षं स्वौं सोमाय नमः षं
४८ सं स्वौं सोमाय नमः सं
४६ हं स्वौं सोमाय नमः हं
५० ळं स्वौं सोमाय नमः ळं
*

क्षं
५१ ळं स्वौं सोमाय नमः ळं
५२ हं स्वौं सोमाय नमः हं
५३ सं स्वौं सोमाय नमः सं
५४ षं स्वौं सोमाय नमः षं
५५ शं स्वौं सोमाय नमः शं
५६ वं स्वौं सोमाय नमः वं
५७ लं स्वौं सोमाय नमः लं
५८ रं स्वौं सोमाय नमः रं
५६ यं स्वौं सोमाय नमः यं
६० मं स्वौं सोमाय नमः मं
६१ भं स्वौं सोमाय नमः भं
६२ बं स्वौं सोमाय नमः बं
६३ फं स्वौं सोमाय नमः फं
६४ पं स्वौं सोमाय नमः पं
६५ नं स्वौं सोमाय नमः नं
६६ धं स्वौं सोमाय नमः धं
६७ दं स्वौं सोमाय नमः दं
६८ थं स्वौं सोमाय नमः थं
६६ तं स्वौं सोमाय नमः तं

७० णं स्वौं सोमाय नमः णं
७१ ढं स्वौं सोमाय नमः ढं
७२ डं स्वौं सोमाय नमः डं
७३ ठं स्वौं सोमाय नमः ठं
७४ टं स्वौं सोमाय नमः टं
७५ ञं स्वौं सोमाय नमः ञं
७६ झं स्वौं सोमाय नमः झं
७७ जं स्वौं सोमाय नमः जं
७८ छं स्वौं सोमाय नमः छं
७६ चं स्वौं सोमाय नमः चं
८० ङं स्वौं सोमाय नमः ङं
८१ घं स्वौं सोमाय नमः घं
८२ गं स्वौं सोमाय नमः गं
८३ खं स्वौं सोमाय नमः खं
८४ कं स्वौं सोमाय नमः कं
८५ अः स्वौं सोमाय नमः अः
८६ अं स्वौं सोमाय नमः अं
८७ औं स्वौं सोमाय नमः औं
८८ ओं स्वौं सोमाय नमः ओं
८६ ऐं स्वौं सोमाय नमः ऐं

६० एं स्वौं सोमाय नमः एं
६१ ॡं स्वौं सोमाय नमः ॡं
६२ ॡं स्वौं सोमाय नमः ॡं
६३ ॠं स्वौं सोमाय नमः ॠं
६४ ऋं स्वौं सोमाय नमः ऋं
६५ ऊं स्वौं सोमाय नमः ऊं
६६ उं स्वौं सोमाय नमः उं
६७ ईं स्वौं सोमाय नमः ईं
६८ इं स्वौं सोमाय नमः इं
६६ आं स्वौं सोमाय नमः आं
१०० अं स्वौं सोमाय नमः अं
१०१ अं स्वौं सोमाय नमः अं
१०२ कं स्वौं सोमाय नमः कं
१०३ चं स्वौं सोमाय नमः चं
१०४ टं स्वौं सोमाय नमः टं
१०५ तं स्वौं सोमाय नमः तं
१०६ पं स्वौं सोमाय नमः पं
१०७ यं स्वौं सोमाय नमः यं
१०८ शं स्वौं सोमाय नमः शं

* * *

प्रयोग— (१) **'चन्द्र-देव'** का हृदय में ध्यान करते हुए उक्त मन्त्र का **'जप'** करे, तो **'लक्ष्मी' की प्राप्ति** होती है। (२) मस्तक में **'चन्द्र-देव'** का ध्यान करते हुए **'जप'** करे, तो **रोग, अकाल-मृत्यु** और **दुःखों से छुटकारा** मिलता है और **दीर्घायु की प्राप्ति** होती है। (३) जितेन्द्रिय होकर **'पूर्णिमा'** में **'जप'** करने से **'सर्व-सौभाग्य की प्राप्ति'** होती है।

विशेष प्रयोग— **'पूर्णिमा'** में निराहार रह कर **चन्द्रोदय** के समय चाँदी के पात्र में दूध भरकर रखे। पात्र को स्पर्श करते हुए १०८ बार उक्त मन्त्र का **'जप'** करे। फिर निम्न-लिखित मन्त्र पढ़ते हुए **सर्व-कामना-सिद्धि** हेतु चन्द्रमा को उक्त दूध से **अर्घ्य** प्रदान करे—

'ॐ विद्ये विद्या-मालिनि चन्द्रिणि चारु-मुखि स्वाहा।'

इस प्रकार प्रति मास 'पूर्णिमा' के दिन करे। शीघ्र ही सभी कामनाएँ पूरी होती हैं। **कन्या को उत्तम वर, वर को कन्या, धन-धान्य, सौभाग्य, यश—**सभी कुछ इस प्रयोग से मिलता है।

* * *

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान द्वारा प्रचारित उपयोगी प्रकाशन

चण्डिका माहात्म्य ५)
छिन्न-मस्ता नित्यार्चन (सचित्र) १५)
तत्त्व-विवेचन ३)
तन्त्र-कल्पतरु ४०)
प्रस्तुत निबन्ध-संग्रह द्वारा 'तन्त्र' की विविध विशेषताओं पर विस्तार के साथ विचार किया गया है।
तन्त्र-विशेषाङ्क ३०)
'चण्डी'-पत्रिका का अङ्क।
तारापुर का महा-मानव ३)
तारा-नित्यार्चन १०)
तारा-स्तव-मञ्जरी (स्तोत्र-संग्रह) २०)
इस नवीन संस्करण में भगवती तारा के १५ स्तोत्रों को हिन्दी रूपान्तर सहित प्रकाशित किया गया है।
तारा-कल्पतरु यन्त्रस्थ
दिव्य योग ६)
दीपावली की पूजा-विधि १५)
'दीपावली' महा-पर्व पर प्रामाणिक पुस्तक।
दीक्षा-प्रकाश यन्त्रस्थ
दुर्गा-आरती २)
दुर्गा के सहस्त्र-नाम १५)
भगवती दुर्गा के १००८ नामों के अर्थ।
दुर्गा-स्तव-मञ्जरी २५)
दुर्गा सप्तशती (पद्यानुवाद) १२)
पं० देवीदत्त शुक्ल कृत शब्दशः पद्यानुवाद।
दुर्गा सप्तशती (विशुद्ध-संस्करण) २०)
संस्कृत में शुद्ध 'दुर्गा सप्तशती' षडङ्ग-सहित।
दुर्गा सप्तशती (बीजात्मक) ६)
दुर्गा-कल्पतरु (निबन्ध व स्तोत्र-संग्रह) १५)
भगवती दुर्गा सम्बन्धी निबन्ध-संग्रह।
दुर्गा-सहस्त्र-नाम-साधना ५)

धन-प्राप्ति के प्रयोग ६)
धन के बिना जीवन व्यर्थ जाता है। इसी दृष्टि से यह पुस्तक लिखी गई है और इसमें अनुभूत प्रयोग दिए गए हैं। दुर्लभ 'कनक-धारा-स्तोत्र' भी अर्थ-सहित दिया गया है।
धर्म-चर्चा १०)
हिन्दू-धर्म विषयक सार-गर्भित चर्चा।
ध्यान-योग एवं विचार-योग ४)
नवरात्र-कल्पतरु यन्त्रस्थ
इस लेख-संग्रह से नवरात्र की विशेषताओं को जानकर वास्तविक लाभ उठाया जा सकता है।
नवरात्र-पूजा-पद्धति [वैदिक] ३)
नवरात्र-पूजा-पद्धति [पौराणिक] ८)
नवार्ण-यन्त्र पूजन-विधि ५)
निष्काम योग एवं कर्म-संन्यास योग ८)
पञ्च-मकार विशेषाङ्क ४०)
'पञ्च-मकार'-सम्बन्धी बहु उपयोगी निबन्ध-संग्रह।
पञ्च-मकार तथा भाव-त्रय २०)
शाक्त-धर्म में पशु, वीर और दिव्य—इन तीन भावों के अन्तर्गत व्यक्तियों को माना गया है और इन्हीं तीनों को ध्यान में रखते हुए पश्वाचार, वीराचार तथा कौलाचार—इन तीन मुख्य आचारों का वर्णन किया गया है। उक्त तीन भावों और पाँच मकारों (मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन) का विस्तार के साथ जैसा विवेचन इस पुस्तक में किया गया है, वैसा किसी अन्य पुस्तक में आज तक नहीं हुआ है।
पूजा-रहस्य ४०)
हिन्दुओं की पूजा का सार-गर्भित निबन्ध-संग्रह।
पारायण-विधि ६)
पितृ-तर्पण विधि ३)

कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज (उ० प्र०) ☎ : ५०२७८३

रजि० सं० ए० डी० ६१ जून, २००० रजि० सं० ३२६८१/५७

सम्पादक/प्रकाशक/मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, चण्डी-धाम, प्रयागराज-६ ✆ : ५०२७८३